भारतीय इतिहास के निर्माता ग्रन्थमाला

छत्रपति शिवाजी

लेखक—काशीनाथ गोविन्द जोगलेकर

प्रकाशन विभाग
सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

माघ 1893 ● जनवरी 1972

मूल्य : 1·80

निदेशक प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1 द्वारा मुद्रित

क्षेत्रीय कार्यालय :

बोटावाला चैम्बर्स, सर फीरोजशाह मेहता रोड, बम्बई—1
आकाशवाणी भवन, कलकत्ता—1
शास्त्री भवन, 35, हेडोस रोड, मद्रास—6

पीताम्बर प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली द्वारा मुद्रित

भारतीय इतिहास के निर्माता ग्रंथमाला

प्रकाशन विभाग 'आधुनिक भारत के निर्माता', 'भारत के गौरव' और 'भारत के अमर चरित' ग्रंथमाला निकाल चुका है। अब आपके सामने भारतीय इतिहास के निर्माता ग्रंथमाला प्रस्तुत की जा रही है। इस माला में छत्रपति शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, रणजीतसिंह, अशोक, राणा प्रताप, अकबर, गौतम बुद्ध आदि के प्रामाणिक जीवन चरित प्रकाशित किए जाएंगे।

इन पुस्तकों में इन ऐतिहासिक व्यक्तियों के व्यक्तित्व और कार्य को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की जाएगी, जिससे पाठकों को उनके कार्य के महत्व का ज्ञान हो और उनके समय के इतिहास की भी जानकारी हो।

इस माला में पहले हम अकबर तथा झाँसी की रानी-लक्ष्मीबाई की जीवनी प्रस्तुत कर चुके हैं। इस छोटी सी जीवनी में शिवाजी के जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को संजोया गया है। शिवाजी का जीवन स्वतंत्रता संघर्ष का प्रतीक है। लोकमान्य तिलक ने शिवाजी उत्सव इसी हेतु आरम्भ किया था कि इससे भारत के लोगों को विदेशी शासन से लड़ने में उत्साह मिले। शिवाजी वीर योद्धा और कुशल सेनापति होने के साथ ही राजनीति और कूटनीति के भी मंजे हुए खिलाड़ी थे। उन्होंने केवल नया राज्य स्थापित ही नहीं किया, बल्कि उसका प्रबन्ध बड़ी सूझबूझ से किया। उनका चरित्र बहुत ऊंचा था। वह सारे जीवन मुगल और बीजापुर सल्तनत से लड़ते रहे पर मजाल नहीं था कि उनके सिपाही किसी निर्बल को सताएँ या किसी स्त्री पर अत्याचार करें। वह सब धर्मों का सम्मान करते थे। उनके विश्वस्त साथियों में अनेक मुसलमान थे। उनके राज्य में सब धर्मों के साथ एक समान बर्ताव होता था। उनका चरित्र नवोदित राष्ट्र को बहुत प्रेरणा दे सकता है।

स्वतन्त्र राष्ट्र की सुरक्षा के लिए चरित्र निर्माण का कार्य सब कामों से अधिक जरूरी है। हमारे बच्चे इन वीरों के चरित्र से प्रेरणा पाएंगे हम ऐसी आशा करते हैं।

विषय-सूची

भूमिका

सत्रहवीं सदी का भारत घोर निराशा से ग्रस्त था। दिल्ली की केन्द्रीय हिन्दू सत्ता सन् 1193 में समाप्त हो चुकी थी और पठान, लोदी, खिलजी, तुगलक आदि सम्राटों के बाद अब वहाँ मुगल वंश गद्दी पर था। उधर भारत पूरी तरह जीतने के बाद मुसलमानों ने दक्षिण के देवगिरि, वारंगल, द्वारा समुद्र, चोल, पांड्य आदि साम्राज्यों को नष्ट किया। लगभग दो सौ वर्ष तक स्वतंत्रता की ज्योति जीवित रखने के बाद विजयनगर का साम्राज्य नष्ट हो गया। दिल्ली के मुगल बादशाह और दक्षिण में बीजापुर, गोलकोण्डा, अहमदनगर के सुलतान प्रारम्भ में देश की बहुसंख्य हिन्दू जनता से कुछ उदारतापूर्ण बरताव करते थे पर शाहजहां के समय तक परिस्थिति बदल चुकी थी। ये बादशाह और सुलतान अपनी हिन्दू प्रजा से घृणा करने लगे थे और उसके धार्मिक विचारों का अनादर मन्दिर तोड़ना, बल-पूर्वक मुसलमान बनाना, और हिन्दुओं को तरह-तरह से कष्ट देना मामूली बात हो गई थी।

अपनी दुर्दशा से छुटकारा पाने का कोई रास्ता हिन्दू जनता को दिखाई न देता था। बार-बार की असफलता ने उसे निराश कर दिया था। लोग यह समझने लग गए थे कि राज्य मुसलमानों का ही होगा, हिन्दुओं का काम केवल सेवा करना है। मानसिंह, जयसिंह और जसवन्तसिंह जैसे वीर राजा, टोडरमल जैसे कुशल प्रबन्धक, बीरबल जैसे बुद्धिमान पुरुष, सबने अपना जीवन सेवा में ही व्यतीत किया। स्वतंत्र होने की कभी इच्छा उनके मन में आई हो इसका कोई सबूत नहीं मिलता। भारत की जनता अत्याचार से पीड़ित थी पर प्रतिरोध करने की उसकी शक्ति और इच्छा लगभग नष्ट हो चुकी थी।

पर अपने लगभग पचास वर्ष के जीवन में ही छत्रपति शिवाजी ने निराशा का यह अंधकार दूर कर दिया। मुगल साम्राज्य और बीजापुर की शक्तिशाली सेनाओं से आजीवन संघर्ष कर उन्होंने उस मराठा साम्राज्य की नींव डाली जो बाद में सारे उत्तर भारत में फैल गया। मामूली किसानों की सेना खड़ी कर उन्होंने मुगल और बीजापुर की सुसज्जित सेनाओं के छक्के छुड़ा दिए। युद्ध शास्त्र में नए तरीके अपनाए जिससे छोटे कद के मराठे भारी भरकम शरीर के पठानों पर विजय पा सकें। उन्होंने अपनी बुद्धि से हार को भी जीत में बदल दिया।

वीर योद्धा और कुशल सेनापति होने के साथ-साथ वे राजनीति और कूटनीति के भी मँजे हुए खिलाड़ी थे। उनके राज्य के प्रबन्ध में जो सिद्धान्त अपनाए गए थे वे तब तक भारत के लिए तो क्या विदेशों के लिए भी नए थे।

वे सम्भवत: पहिले भारतीय शासक थे जिन्होंने नौसेना के महत्व को पहिचाना। कुछ ही वर्षों में उन्होंने जिस नौसेना का निर्माण किया उससे भारतीय ही नहीं अंग्रेज और पुर्तगाली भी डरते थे। जब यह नौसेना नष्ट हुई तभी अंग्रेजों के पैर इस देश में जम पाए।

छत्रपति शिवाजी ने सारे जीवन मुसलमान शासकों से युद्ध किया लेकिन व्यक्तिगत रूप से वे मुसलमानों के शत्रु न थे। उनकी लड़ाई अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध थी। उनके राज्य में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। हिन्दू साधुओं का ही नहीं वे मुसलमान सन्तों का भी आदर करते थे। मन्दिर और मस्जिद दोनों को उनसे दान मिलता था। सन्त रामदास और सन्त तुकाराम के वे भक्त थे तो दूसरी ओर बावा याकूत के भी मुरीद थे।

उनके राज्य में और सेना में सभी जातियों के हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमान भी बड़े-बड़े ओहदों पर थे। उनके निजी सचिव थे काज़ी हैदर। नौसेना में दौलत खां उच्च पदाधिकारी थे तो स्थल सेना में थे सिद्दी हिलाल। जिन किलेदारों पर उनका पूर्ण विश्वास था उनमें मुहम्मद सिद्दीक भी थे। जब छत्रपति शिवाजी अफजल खाँ से मिलने गए तो जो दस अंग रक्षक उनके साथ गए उनमें एक थे शेख इब्राहीम। उनका निजी सेवक मनारी मेहतर मुसलमान था और उसने औरंगजेब के चंगुल से बच निकलने में उनकी पूरी सहायता की थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उनमें मुसलमानों के प्रति कोई द्वेष की भावना न थी। इतना ही नहीं उनके अनन्य भक्तों में मुसलमान भी थे और शिवाजी को उनका पूरा विश्वास प्राप्त था।

छत्रपति शिवाजी का धार्मिक दृष्टिकोण उदार था। बलपूर्वक या प्रलोभन देकर जिन हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था उनमें से जिन्होंने चाहा उन्हें फिर हिन्दू समाज में सम्मिलित करने का प्रयास शिवाजी ने ही आरम्भ किया। बजाजी निम्बालकर और नेताजी पालकर इसके उदाहरण हैं। हिन्दू होने के बाद इन लोगों को फिर प्रतिष्ठा मिले इसका वे पूरा ध्यान रखते थे।

लड़ाई समाप्त होते ही वे बैर भूल जाते थे। मृत शत्रु के शव का आदर करते थे। स्त्रियों पर अत्याचार न करने के लिए उन्होंने सेना को कड़े आदेश दिए थे। उस समय के समाज में यह नई बात थी क्योंकि अक्सर मुसलमान शासक मृत शत्रु की लाश और उसके स्त्री और बच्चों के साथ बड़ी निर्दयता से पेश आते थे।

मराठी में राजकाज चल सके इसलिए उन्होंने नए कोश का संकलन कराया। भूषण और परमानन्द जैसे हिन्दी कवि और गागाभट्ट जैसे विद्वानों को उन्होंने प्रोत्साहन दिया।

सफल सेनापति, योग्य शासक, एवं कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में वे अद्भुत थे और संसार के महान पुरुषों में उनकी गणना की जा सकती है। पर उनका सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने भारत के इतिहास को नया मोड़ दिया और सोए हुए देश को जागृत कर उसे आत्मसम्मान और आत्म-विश्वास दिया। लगभग छः सौ वर्ष की पराजय और अपमान की परम्परा को तोड़ने और विजय की परम्परा स्थापन करने का श्रेय उन्हीं को है। उनका राज्याभिषेक भारत के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। कई सौ वर्ष के बाद एक ऐसे राजा का राज्याभिषेक हुआ था जिसका राज्य किसी दूसरे के अधीन न था। उसका आधार था उसका बाहुबल और उसके देश वासियों का प्रेम। स्वतंत्रता की जो ज्योति उन्होंने जलाई उससे सारा देश आलोकित हो उठा। मराठा साम्राज्य के अलावा बुन्देलखण्ड में राजा छत्रसाल को भी उन्हीं से प्रेरणा मिली। पंजाब में सिख साम्राज्य की स्थापना तभी सम्भव हो सकी जब शिवाजी और मराठों ने मुगल साम्राज्य को जर्जर कर दिया।

छत्रपति शिवाजी का सारा जीवन देश प्रेम, न्यायप्रियता, साहस, वीरता और धैर्य का एक महान पाठ है। आज्ञाकारी पुत्र, वीर सेनापति, कुशल शासक इन सबका उनमें अद्भुत मिलाप था। स्वतंत्र भारत जिन आदर्शों को मानता है उन्हीं के लिए उन्होंने सारा जीवन व्यतीत किया। उनके जीवन से हमें बहुमूल्य सबक और प्रेरणा मिलती है।

जन्म और बचपन

छत्रपति शिवाजी के जन्मदिन के सम्बन्ध में काफी मतभेद है। अधिकतर विद्वानों का मत है कि उनका जन्म 19 फरवरी, सन् 1630 को हुआ यद्यपि कुछ लोगों का मत है कि उनका जन्म दिन 6 अप्रैल, 1627 है। इतना अवश्य निश्चित है कि जन्म जुन्नर के निकट शिवनेरी दुर्ग में हुआ। जन्म के समय भोंसले परिवार पर घोर संकट आया था और सुरक्षा की दृष्टि से उनके पिता शहाजी ने उनकी माँ जिजाबाई को शिवनेरी भेज दिया था।

भोंसले कुल के बारे में यह विश्वास है कि इसका सम्बन्ध उदयपुर के महाराणा से है। अलाउद्दीन खिलजी ने जब चित्तौड़ जीता तो महाराणा कुल का एक पुरुष दक्षिण में जा बसा और कहते हैं कि भोंसले उसी के वंशज हैं। शिवाजी के दादा मालोजी एलोरा के पास एक गाँव में रहते थे। वहाँ कुछ गाँवों के तथा पूना के पास के कुछ गाँवों के वे पटेल थे। वे बड़े प्रभावशाली थे। उनके समय तक भोंसले परिवार की सिपाहीगरी की परम्परा प्रायः समाप्त हो चुकी थी। उन्होंने इसे फिर कायम किया। एलोरा के निकट ही शिन्दखेड है। यहाँ के जागीरदार लखूजी जाधवराव उस समय के बड़े सरदारों में गिने जाते थे। मालोजी ने जाधवराव के अधीन नौकरी कर ली। इन्हीं जाधवराव की कन्या जिजाबाई छत्रपति शिवाजी की माता थीं।

जाधवराव कुल देवगिरी के प्राचीन नरेश यादवों का वंशज है। खिलजी सुलतानों के हाथों देवगिरी का राज्य नष्ट होने के बाद ये लोग जागीरदार मात्र रह गए थे। धीरे-धीरे इन्होंने फिर उन्नति की और ये दक्षिण के प्रमुख हिन्दू सरदारों में गिने जाने लगे। मालोजी और उनके भाई विठोजी ने थोड़े दिन ही लखूजी की नौकरी की और उसके बाद वे अहमदनगर के सुलतान के पास चले गए। वहाँ उन्होंने शीघ्र उन्नति की और सुलतान ने उन्हें पूना के आस-पास के इलाके में छोटी-सी जागीर दी।

मालोजी ने जाधवराव की नौकरी क्यों छोड़ी इसके बारे में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि एक वर्ष होली पर लखूजी ने अपने सब अधिकारियों की दावत की। इस दावत में मालोजी के साथ उनके पुत्र शहाजी भी गए थे। लखूजी के बैठकख़ाने में बालक शहाजी और लखूजी की लड़की जिजाबाई एक दूसरे से खेलने लगे। उनको देखकर लखूजी ने कहा, "इनका जोड़ा कितना अच्छा है।"

मालोजी ने इस पर वहाँ एकत्र सभी लोगों से कहा, "आप सब साक्षी हैं। जाधवराव साहब ने अपनी लड़की की सगाई मेरे लड़के से कर दी है।"

जाधवराव ने इसका प्रतिवाद किया। उनके जैसा बड़ा जागीरदार अपनी लड़की अपने ही किसी अधिकारी के लड़के को कैसे दे सकता था? उन्होंने कहा, "मैं तो केवल मज़ाक कर रहा था, सगाई ऐसे थोड़े ही होती है?" दूसरी ओर मालोजी का कहना था कि जाधवराव अपनी ज़बान हार चुके हैं



ग्रौर ग्रब मुकर रहे हैं। कहा जाता है कि इस विवाद के बाद मालोजी ने जाधवराव की नौकरी छोड़ दी ग्रौर वे ग्रहमदनगर चले गए।

पूना की जागीर मिलने के बाद मालोजी ने यह प्रश्न फिर उठाया। तब तक ग्रहमदनगर में भी उनका काफी प्रभाव हो चुका था। ग्रहमदनगर के सुलतान ने लखूजी पर जोर डाला ग्रौर शहाजी ग्रौर जिजाबाई का विवाह 5 नवम्बर, 1605 को हो गया। लगभग इसी समय मालोजी की मृत्यु हो गई। शहाजी तब बहुत छोटे थे।

युवा होने के बाद शहाजी ने बीजापुर ग्रौर ग्रहमदनगर राज्यों की सेना में बड़ा नाम कमाया। वे प्रमुख सरदारों में गिने जाने लगे। पर उन्हें निराशा भी बड़ी हुई। उन दिनों दक्षिण के प्रमुख सुलतानों बीजापुर, ग्रहमदनगर ग्रौर गोलकोण्डा में बराबर लड़ाई-झगड़े होते रहते थे। दूसरी ग्रोर मुगल बादशाह भी दक्षिण भारत विजय करना चाहते थे। इन लड़ाइयों के कारण मुल्क वीरान हो रहा था। बीजापुर ग्रौर ग्रहमदनगर के राज्यों पर ग्राए कई संकटों में शहाजी ने बड़ी वीरता ग्रौर निष्ठा का परिचय दिया लेकिन संकट टलते ही सुलतान उनकी उपेक्षा करते थे। दो तीन बार उन्होंने स्वतंत्र होने की कोशिश भी की लेकिन उनके प्रयत्न ग्रफसल रहे।

दूसरी ग्रोर शहाजी ग्रौर जिजाबाई के विवाह के बाद भी भोंसले ग्रौर जाधवराव परिवार में कोई प्रेम न था। लखूजी इस विवाह के लिए मुश्किल से ही राजी हुए थे। एक घटना से तो दोनों परिवार एक दूसरे के शत्रु हो गए।

एक दिन अहमदनगर के सुलतान का दरबार समाप्त होने के बाद लखूजी जाधवराव और उनके पुत्र तथा शहाजी और उनके चचेरे भाई दरबार के बाहर निकले तो दोनों दलों में एक हाथी को लेकर खुलकर लड़ाई हुई जिसमें लखूजी और शहाजी ने एक दूसरे पर तलवार उठाई। शहाजी जख्मी हुए। जाधवराव का एक पुत्र और शहाजी का एक चचेरा भाई इस लड़ाई में मारे गए और शहाजी तथा अन्य कई लोग आहत हुए।

इस घटना के बाद जाधवराव मुगलों से जा मिले। मुगल उन दिनों बीजापुर से साँठगाँठ कर अहमदनगर राज्य को नष्ट करना चाहते थे। दूसरी ओर शहाजी उस समय वहाँ के सर्वेसर्वा बन चुके थे और उन्होंने राज्य की रक्षा का बीड़ा उठाया था। इस प्रकार राजनीति में भी ये दोनों परिवार विरोधी पक्षों में थे। इन बातों का परिणाम शहाजी जिजाबाई के जीवन पर भी पड़ा। शहाजी का जीवन निरन्तर भगदड़ और लड़ाई का जीवन था। वे अपनी पत्नी को साथ कहाँ रखते? जब शिवाजी का जन्म हुआ तब तो स्थिति और भी खराब थी। वे अकेले ही मुगल और बीजापुर की सेना से उलझ रहे थे। पूना की उनकी जागीर तहस-नहस कर दी गई थी और सुरक्षा की दृष्टि से उन्होंने अपनी पत्नी जिजा-बाई को शिवनेरी के दुर्गम किले में भेज दिया था। यहीं शिवाजी का जन्म हुआ।

जिजाबाई के अतिरिक्त शहाजी की एक अन्य पत्नी तुकाबाई भी थी। जिजाबाई को कई बच्चे हुए पर केवल दो पुत्र संभाजी और शिवाजी बच पाये दूसरी पत्नी तुकाबाई से शहाजी को एक पुत्र एकोजी उर्फ व्यंकोजी थे। शिवाजी के जन्म के कुछ वर्ष बाद तक आपाधापी की स्थिति बनी रही। निरन्तर लड़ाई हो रही थी। मुगल और बीजापुर की संयुक्त ताकत के सामने शहाजी टिक न सके। अहमद नगर का राज्य नष्ट हो गया। उसकी आड़ में राज्य करने का शहाजी का स्वप्न चकनाचूर हो गया और उन्हें बीजापुर दरबार की नौकरी करनी पड़ी। सुलतान उनका मान करते थे लेकिन उनसे भय भी खाते थे। सुलतान ने इन्हें महाराष्ट्र में रखना खतरनाक समझा इसलिए उनको मान सम्मान और पद तो दिया गया पर साथ-साथ यह आज्ञा भी दी गई कि वे महाराष्ट्र से सैकड़ों मील दूर कर्नाटक जीतने के लिए जायें। बीजापुर की नौकरी स्वीकार करने के कारण अब उनकी जागीर को कोई खतरा न था। शहाजी ने जिजाबाई और बालक शिवाजी को पूना भेज दिया और वे बंगलौर चले गए।

इस समय पूना उजाड़ हो चुका था। अहमदनगर राज्य के पक्ष में किए गए शहाजी के प्रयत्नों के लिए उन्हें दण्ड देने के लिए बीजापुर की सेना ने शहाजी का मकान ही नहीं सारा प्रदेश ध्वस्त कर दिया था। लोग या तो मारे गए या भाग गए थे। सम्भवतः जिजाबाई और शिवाजी को पूना भेजने में शहाजी का उद्देश्य था जागीर को फिर आबाद करना। काम अवश्य कठिन था पर शहाजी ने जिस आदमी पर यह काम सौंपा था उसकी बुद्धि और लगन के अनुरूप था। इस पुरुष का नाम था दादाजी कोण्डदेव। इनका सारा जीवन भोंसले कुल की सेवा में व्यतीत हुआ था। निष्ठा, देशभक्ति, लगन, अनुभव, बुद्धि आदि गुणों का उनमें अद्भुत समन्वय था। शहाजी उनका बड़ा आदर करते थे, बड़ा विश्वास था उन पर। तभी तो उनके भरोसे अपनी पत्नी और छोटे पुत्र को छोड़कर वे निश्चिन्त हो कर्नाटक चले गए। दादाजी का बीजापुर दरबार में भी मान था। शहाजी के दीवान होने के अतिरिक्त वे पूना के निकट सिंहगढ़ जिसे तब कोंडाणा कहते थे, के, सुलतान की ओर से सूबेदार भी थे। बाद में उनके इस पद से शिवाजी के स्वराज्य के प्रयत्नों में बड़ा फायदा हुआ।

दादाजी पर तीन बड़ी जिम्मेदारियाँ थीं। पहली जिजाबाई और शिवाजी की रक्षा, दूसरी जागीर का बन्दोबस्त और तीसरी शिवाजी की उचित शिक्षा-दीक्षा। ये तीनों काम एक दूसरे से सम्बद्ध थे। उन्होंने पूना में जिजाबाई और शिवाजी के रहने के लिए मकान बनवाया और उसे नाम दिया लाल महल। उजाड़ पूना फिर आबाद हुआ। जहाँ सियार उल्लू बोलते थे वहाँ मनुष्यों की चहल-पहल

दिखाई पड़ने लगी। लोगों को जब यह विश्वास हुआ कि उनकी जान और माल सुरक्षित रहेगा तब उन्होंने फिर मकान बनवाए। मन्दिरों और मस्जिदों में फिर आराधना होने लगी और उनको जमीनें दी गईं।

इसी तरह दादाजी ने देहात में भी लोगों को बसाया। दस बारह वर्ष लड़ाई के कारण जमीन फालतू पड़ी थी। अब फिर उसमें हल चलने लगे। जमीन का बन्दोबस्त ठीक तरीके से किया गया। सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाएँ कार्यान्वित की गईं, जागीरदार की ओर से किसानों को तकावी दी गई उनके प्रयत्नों को यश मिला और गांव फ़िर से बस गए, खेती बाड़ी होने लगी, लोग सुख और शांति से रहने लगे। लोगों को न्याय मिलने लगा। दादाजी स्वतः तो न्यायप्रिय थे ही, किसी भी फ़रयादी के लिए लाल महल जाकर जिजाबाई से न्याय माँगने की भी खुली छूट थी। चोर, डाकुओं का उपद्रव बन्द हुआ। प्रजा सुखी हुई और जागीर की आमदनी भी बढ़ी।

इस सब काम में वर्षों लग गये। दादाजी का शिवाजी की ओर पूरा ध्यान था। वे हमेशा शिवाजी को साथ रखते थे। जमीन का बन्दोबस्त कैसे करना चाहिए, न्याय कैसे देना चाहिए, रक्षा की व्यवस्था कैसी होनी चाहिए आदि राज-काज के प्रश्न उनके सामने सुलझाए जा रहे थे। वे देख रहे थे, पूछ रहे थे, सीख रहे थे और समझ रहे थे। भविष्य का एक कुशल और योग्य शासक ये बातें ऐसे गुरु से सीख रहा था जिसे व्यापक अनुभव था, लगन थी और थी अपने स्वामी के प्रति निष्ठा मानों अधुनिक द्रोणाचार्य और अर्जुन हों। स्वाभाविक था कि शिवाजी के मनमें सवाल उठा हो कि जागीर किसने बरबाद की, गाँव किसने जलाए, जनता को किसने बेघर किया, क्यों किया और उसे कोई रोक क्यों न सका ?

ये सब सवाल उनके मन में अवश्य उठे होंगे। दादाजी ने उनका यथाशक्ति समाधान किया होगा। देश की दुर्दशा देखकर वे भी बड़े दु.खी थे। पर उनके अलावा बालक शिवाजी ने ये प्रश्न अपनी माँ जिजाबाई से अवश्य पूछे होंगे। उस समय की स्त्रियों की तुलना में जिजाबाई बहुश्रुत थीं। रामायण महाभारत और पुराण, चित्तौड़ और देवगिरी का इतिहास उन्हें मालूम था। देश की स्थिति देखकर वे दु:खी थीं।

अन्याय कितना दुखदाई होता है यह वे अनुभव कर चुकी थीं। वे देख रही थीं कि शासक देश की बहुसंख्य जनता पर अत्याचार करते थे, उनके मन्दिरों को नष्ट करते थे और स्त्रियों को बेइज्जत। इन अत्याचारों की कोई सुनवाई न थी। हिन्दू अपने ही घर में गुलाम हो गए थे। वे तरह-तरह के कर देते थे, सुलतानों के लिए लड़ते थे, मरते थे लेकिन उनका न विश्वास किया जाता था न कोई मान दिया जाता था। शहाजी जैसे सरदारों का लड़ाई के समय तो सुलतान आदर करते थे पर जहाँ काम निकला वहीं उनका अपमान होने लगता। इस कारण जिजाबाई को दुःख तो था इससे कहीं अधिक दुःख उन्हें अपने पिता के वध के कारण था। एक दिन अहमदनगर के सुलतान ने लखूजी और उनके पुत्रों को दौलताबाद में अपने दरबार में बुलाया और जब निकल रहे थे तो उनकी हत्या करवा दी। इसी प्रकार बीजापुर के सुलतान ने एक योग्य और वीर हिन्दू सरदार मुरार जगदेव की अकारण जीभ कटवा ली उनको सारे बाज़ार में घुमवाया और फिर उनके टुकड़े-टुकड़े करवा दिए। इन अन्यायों से वे दु:खी थीं। अन्याय का प्रतिकार करने की और देश को स्वतन्त्र करने की प्रेरणा माँ ने पुत्र को दी और पुत्र ने उसे साकार बनाया।

साथ-साथ एक बड़े जागीरदार के अनुरूप शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा भी हो रही थी। वे लिखना-पढ़ना सीख गए थे। इसके साथ घुड़सवारी और हाथी चलाना भी उन्हें आ गया था। तलवार,

भाला, धनुष-वाण और अन्य शस्त्रास्त्र चलाने में वे निपुण हो गए थे। नियमित व्यायाम, कुश्ती और अन्य खेलों से शरीर विकसित हो रहा था।

पूना के आसपास का सारा इलाका पहाड़ी है। दिन के समय अक्सर शिवाजी और उनके साथी इन पहाड़ों में पैदल घूमते, शिखर तक चढ़ते। इस प्रदेश में बहुत-से किले हैं उन्हें वे देखते। इससे उनको इस सारे प्रदेश की, पर्वतों की पूरी जानकारी हो गई। शरीर में कष्ट सहन करने की क्षमता आई।

जागीर की सुव्यवस्था के कारण जनता सुखी थी और शिवाजी और दादाजी के प्रति उसके मन में निष्ठा और भक्ति जागृत हो रही थी। इस क्षेत्र में रहने वाले लोग गरीब, मेहनती, वीर, स्वाभिमानी,



निष्कपट और ईमानदार थे। शिवाजी के रूप में उन्हें ऐसा नेता मिला जो उनके मन के अनुकूल था, जो उनकी बात समझता था, भावना से परिचित था और उन्हीं की तरह वीर और स्वाभिमानी था। शिवाजी का हँस-मुख चेहरा, आकर्षक व्यक्तित्व, बातचीत का तरीका उन्हें भा गया। वे उनके भक्त बन गए।

इस प्रकार महाराष्ट्र के भावी राजा का, इतिहास को नया मोड़ देने वाले सफल सेनापति और शासक का मन और शरीर दोनों विकसित हो रहे थे। भावी राजा की ही तरह उसकी प्रजा और सेना भी तैयार हो रही थी। दूसरे शब्दों में इतिहास के एक नए उज्ज्वल अध्याय की पृष्ठ-भूमि तैयार हो रही थी, बस एक नेता की कमी थी।

शहाजी को कर्नाटक गए लगभग चार साल हो गये थे। शिवाजी की श्रायु लगभग दस वर्ष की हो गई थी। उस समय की प्रथा के अनुसार जिजाबाई ने उनका विवाह करने का निश्चय किया। फलटण के प्रसिद्ध निम्बालकर परिवार की लड़की सईबाई से उनका विवाह हुआ। शहाजी उस विवाह के लिये आ न सके। पर बेटे को देखने की उनकी बड़ी इच्छा थी। उन्होंने जिजाबाई और शिवाजी को बंगलौर बुलाया। पिता पुत्र की भेंट हुई। पिता को पुत्र देख प्रसन्नता हुई, अभिमान हुआ पर उसकी निडर और स्वाभिमानी प्रवृत्ति देख कर डर भी हुआ। आशा हुई कि सम्भवतः यह मेरे अधूरे मनोरथ पूरे करेगा तो डर भी हुआ कि कहीं यह आवेश में कुछ ऐसी बात न कर बैठे जिससे इस पर संकट आ जाए। वे शिवाजी को लेकर बीजापुर गए और दरबार में हाज़िरी लगा आये। शहाजी ने पूना की जागीर शिवाजी के नाम कर दी।

शिवाजी के बड़े भाई सम्भाजी पिता के साथ ही बंगलौर में रहते थे। शहाजी को कर्नाटक में जो जागीर मिली थी वह पूना की जागीर से कहीं बड़ी थी। सम्भाजी बड़े थे और इसलिए शहाजी का विचार यह जागीर उन्हें देने का था। अगर सम्भाजी की अकाल मृत्यु न होती तो शायद ऐसा होता। पर उनकी मृत्यु के कारण वह जागीर शिवाजी के सौतेले भाई व्यंकोजी उर्फ एकोजी को मिली।

जागीर पर शिवाजी का नाम चढ़ जाने के कई कारण हो सकते हैं। शहाजी अपने जीवन काल में ही भाइयों का बँटवारा कर देना चाहते हों। या यह भी सम्भव है कि उनके प्रतिनिधि के रूप में जागीर का बन्दोबस्त करने में दादाजी को कुछ कठिनाई आई हो। कारण कुछ भी हो इतना अवश्य निश्चित है कि जब शिवाजी बंगलौर और बीजापुर की यात्रा से वापस पूना लौटे तो वे जागीरदार के रूप में लौटे। शहाजी उनके विवाह में उपस्थित न हो पाए थे। उन्होंने उनका एक और विवाह भी बड़ी धूमधाम से किया। वधू थीं मोहिते परिवार की सोयराबाई। जागीर के प्रबन्ध में शिवाजी की सहायता के लिए उन्होंने कई योग्य अधिकारी दिए। दादाजी ने जिस तरह शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा की थी उस पर प्रसन्न होकर शहाजी ने उन्हें पारितोषिक भी दिया।

पिता-पुत्र की इस भेंट में क्या बातें हुई यह तो इतिहास नहीं बताता पर इतना अवश्य मालूम है कि पूना लौटने के बाद शिवाजी ने आस-पास के गाँव के देशमुखों से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ किया। देशमुखों का राज्य की शासन और भूमि व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान होता था। उनकी आज्ञा या सहमति के बिना देहात में कुछ भी नहीं हो सकता था। पर देशमुखों में आपसी झगड़े बड़े थे। इन झगड़ों के कारण वे केवल अपना स्वार्थ भर देखते थे। देश में क्या हो रहा है इस ओर उनका कोई ध्यान न था। देशमुखों के आपसी झगड़े निपटा कर उनका सहयोग प्राप्त करने में बूढ़े दादाजी ने बड़ी मदद दी। दादाजी अब सत्तर वर्ष के हो चले थे। पर इस नए प्रयास का महत्व वे अच्छी तरह समझते थे। बुढ़ापे में भी कमर कस कर तैयार हो गए। उनकी आयु, अनुभव और निष्ठा के कारण उनका बड़ा नाम था और एक के बाद एक देशमुख शिवाजी को अपना सहयोग देने लगे।

इन देशमुखों में बाजी पासलकर और उनके दामाद कान्होजी थे जो शिवाजी के कट्टर अनुयायी बन गए। बाजी देशमुखों में प्रमुख थे। उनकी आयु शहाजी इतनी थी पर शिवाजी का जादू उन पर ऐसा छा गया कि वे उनके भक्त बन गए। शिवाजी के अन्य प्रमुख साथी थे तानाजी मालुसरे, येसाजी कंक और नेताजी पालकर। शिवाजी के सभी प्रयासों में वे सबसे आगे रहते थे।

स्वराज्य का श्रीगणेश और पिता पर संकट

बीजापुर और बंगलौर से लौटने के बाद शिवाजी ने अपना स्वप्न साकार करने के लिए प्रयास आरम्भ किया। उस समय वे कुल सत्रह-अठारह वर्ष के थे। आसपास के प्रदेश की उनकी जानकारी पूरी थी। किस जगह सुलतान की कितनी सेना है यह वे जानते थे। सभी प्रमुख देशमुख उनके समर्थक बन गए थे। साथियों का दल और छोटी-सी सेना तैयार थी। समर्थगुरु रामदास, सन्त तुकाराम आदि सन्तों ने इसके पहिले ही लोगों के मन में अन्याय का प्रतिकार करने की भावना जागृत की हुई थी। शिवाजी और उनके साथियों ने इस प्रेरणा की चिनगारी को ज्वाला का रूप दिया। शीघ्र ही जनता की मनोभावना में परिवर्तन हुआ। बड़े-बड़े सरदार अब भी गुलामी में ही अपने को धन्य समझते थे पर साधारण जनता में कुछ करने की इच्छा सदियों के बाद जागृत हुई।

पूना के आसपास का प्रदेश अब शिवाजी के हाथ में था। इसके बाद उन्होंने किलों की ओर हाथ बढ़ाना आरम्भ किया। महाराष्ट्र में बहुत से किले हैं और उस समय के लड़ाई के तरीकों में किलों का बड़ा महत्व था। उस समय तोपें छोटी होती थीं और शस्त्रास्त्र भी पुराने ढंग के ही थे। जिसके पास किले हों वह आसपास के प्रदेश पर शासन कर सकता था।

कहा जाता है कि शिवाजी ने सबसे पहिले तोरणा किले पर कब्जा किया। इसकी मरम्मत कराते समय उन्हें बहुत सा गड़ा हुआ धन मिला। इन धन से उन्होंने तोरणा के पास के एक पहाड़ पर नया दुर्ग बनवाकर उसे नाम दिया राजगढ़। काफी समय तक राजगढ़ पर ही उनकी राजधानी थी।

कुछ लेखकों का मत है कि शिवाजी ने सबसे पहिले तोरणा नहीं पूना के निकट का दुर्ग कोंडाणा, जिसे अब सिंहगढ़ कहते हैं, लिया। उनके गुरू दादा जी बीजापुर के सुलतान की ओर से इस किले के सूबेदार थे। जब उनकी मृत्यु हुई तो शिवाजी ने बीजापुर से नया सूबेदार आने के पहिले ही इस किले पर कब्जा कर लिया। दादाजी की मृत्यु शिवाजी के लिए एक बड़ा आघात था। उनका मार्गदर्शक और गुरू उनके जीवन कार्य के आरम्भ में ही बिछुड़ गया। पर शोक करने के लिए समय न था। वे जानते थे कि गुरू के लिए सबसे बड़ी श्रद्धांजली उनके बताए हुए मार्ग पर चलकर स्वराज्य की स्थापना है।

बीजापुर के सुलतान ने पहिले शिवाजी के प्रयास को लड़कों का खेल समझ कर उस ओर कोई ध्यान न दिया। पर जब उसे पता चला कि शिवाजी ने तोरणा, कोंडाणा, रोहिड़ा और पुरन्दर जैसे किलों पर कब्जा कर लिया है और राजगढ़ का नया दुर्ग बनवाया है तब वह चुप न रह सका : इस प्रदेश के रहने वालों ने अब लगान भी सुलतान के खजाने में नहीं शिवाजी के खजाने में देना शुरु किया। आरम्भ में शिवाजी का कार्य गुप्त रीति से और सुलतान के प्रतिनिधि के रूप में हो रहा था, पर शीघ्र ही उसका वास्तविकस्वरूप प्रकट हो गया।

सुलतान ने इस संकट का सामना करने के लिए दो तरफा चाल चली। शिवाजी को कुचलने के लिए उसने अपने एक सरदार फतेहखाँ के नेतृत्व में भारी सेना भेजी। उसने देशमुखों के नाम शाही सेना को सहायता देने और शिवाजी का विरोध करने के लिए फ़र्मान भी जारी किए। फतेहखाँ की सेना बहुत बड़ी थी और उसका सामना करने के लिए शिवाजी के पास थे केवल हजार सैनिक। फिर भी उन्होंने अचानक फतेहखाँ की छावनी पर रात में छापा मारा और एक-दो छोटी लड़ाइयों में विजय प्राप्त की। फतेहखाँ और उसकी सेना तब पुरन्दर दुर्ग की ओर बढ़ी। शिवाजी इस समय वहीं थे। पुरन्दर के बाहर हुई लड़ाई में शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने सुलतान की सेना को हरा दिया। सेना भाग गई। जो न भाग सके वे खेत रहे या बन्दी बनाए गए।

इस सफलता पर प्रसन्न होना स्वाभाविक था। मामूली हथियारों से मावलो की सेना ने बड़ी और अच्छे शस्त्रास्त्रों से सुसज्ज शत्रु-सेना के छक्के छुड़ा दिए थे। रात के अंधेरे में शीघ्रता से लम्बा फासला तय कर शत्रु जब बेखबर हो तो उस पर हमला करने के नए तरीके का यहीं से सूत्रपात हुआ। पहाड़ी इलाकों में इस नई छापामार युद्ध नीति को अपनाकर शिवाजी ने तत्कालीन युद्धशास्त्र में महान क्रान्ति कर दी।

शिवाजी इस समय बड़ी चिन्ता में थे। सुलतान ने केवल उनके विरुद्ध सेना भेजकर ही सन्तोष नहीं कर लिया था। शहाजी कर्नाटक में वहाँ राजाओं को पराजित कर बीजापुर राज्य के विस्तार में लगे थे। सुलतान को संदेह था कि वे इस कार्य में पर्याप्त सख्ती नहीं बरत रहे है : जब शिवाजी के प्रयास का सुलतान को पता चला तो मानों आग में घी पड़ गया। उसने शिवाजी को परेशान करने के लिए शहाजी को बन्दी बनाने का निश्चय किया। यह काम उसने सौंपा मुस्तफाखाँ को। उसकी सहायता के लिए दिए गए शहाजी के कट्टर शत्रु बाजी घोरपड़े। इस कार्य की प्रेरणा दी एक बड़े सरदार अफजलखाँ ने

पर शहाजी को पकड़ना टेढ़ी खीर थी। उनके साथ उनकी फौज थी जो उन पर जान देती थी। इसलिए मुस्तफाखाँ ने धोखाधड़ी से काम लिया। उसने शहाजी से दिखावे के लिए मित्रता का व्यवहार किया। उस समय वे मद्रास के दक्षिण में जिन्जी को जीतने के प्रयास में थे। मुस्तफाखाँ का उन्होंने अपनी छावनी में स्वागत किया। एक दिन रात को जब उनकी सेना सो रही थी तब मुस्तफाखाँ के सिपाहियों ने उनकी छावनी घेर ली। छावनी के बाहर शोर सुनकर शहाजी बाहर आए। उन्होंने और उनके कुछ सिपाहियों ने मुकाबला किया पर अन्त में शाहजी गिरफ्तार कर लिए गए। मराठों का एक वीर सरदार बन्दी हो गया। एक बड़ी लड़ाई के बाद भी जो काम सम्भव न था वह धोखा देकर हो गया। शहाजी को बन्दी बनाकर बीजापुर भेज दिया गया।

शहाजी की गिरफ्तारी से जिजाबाई और शिवाजी को स्वाभाविकतया बड़ी चिन्ता हुई। सुलतान भी यही चाहता था। वह सोचता था कि शहाजी को बचाने के लिए शिवाजी बड़े-से-बड़ा त्याग करेंगे। बाप के प्राण पर संकट ला बेटे को ठीक करने का उनका विचार था। शहाजी की गिरफ्तारी का समाचार जब शिवाजी को मिला तब वे फतेहखाँ के आक्रमण का मुकाबला कर रहे थे। उसको हराने के बाद भी उनके सामने बड़ा प्रश्न था, 'कहीं सुलतान शहाजी के प्राण लेकर बदला तो न लेगा ?'

सुलतान की इस चाल का जवाब उन्होंने जिस कूटनीति से दिया उससे पता चलता है कि कम आयु में ही वे कितने राजनीति कुशल थे। उस समय दिल्ली में शाहजहाँ गद्दी पर था। उसकी पुरानी इच्छा थी कि बीजापुर और गोलकोण्डा के राज्य नष्ट कर मुगल साम्राज्य का दक्षिण में विस्तार किया जाय। शिवाजी ने दक्षिण में मुगल सूबेदार को पत्र लिखा कि वे मुगलों की सेवा करना चाहते हैं लेकिन उनके पिता को बीजापुर के सुलतान ने अन्याय से बन्दी बना रखा है।



शहाजी की गिरफ्तारी से बीजापुर के सुलतान की परेशानी कम न हुई : महाराष्ट्र में शिवाजी ने और कर्नाटक में उनके बड़े भाई सम्भाजी ने बीजापुर की फौजों को बुरी तरह हराया था। उधर एक नया डर यह पैदा हो गया था कि कहीं इस विवाद की आड़ ले मुगल दक्षिण विजय के अपने पुराने मन्सूबे को पूरा करने के लिए हाथ-पांव पसारना न आरम्भ करें। सुलतान मुगलों की ताकत को अच्छी तरह जानता था। इसलिए उसने सम्मान के साथ शहाजी को मुक्त किया। उनसे उसने इतना वायदा अवश्य करवा लिया कि शिवाजी कोंडाणा दुर्ग बीजापुर को सौंप देंगे।

शिवाजी के लिए ऐसा करना कठिन था। कोंडाणा, जिस प्रदेश को शिवाजी ने मुक्त किया था, उसके मध्य में है। इसके उत्तर और दक्षिण में काफी दूर तक का इलाका अब उनके कब्जे में था। इसके बीचोबीच कोंडाणा में बीजापुर की फौज रखना आस्तीन में साँप पालना था। यहाँ से बीजापुर की सेना किसी भी समय उनके कार्य में अड़ंगा डाल सकती थी। पर दूसरी ओर पिता का वचन पूरा करना था। बड़ी अनिच्छा से उन्होंने कोंडाणा खाली किया पर यह वे अच्छी तरह जानते थे कि कोंडाणा उन्हें शीघ्र ही फिर लेना है।

इस समय शिवाजी की आयु लगभग बीस वर्ष की थी। स्वराज्य की स्थापना के उनके प्रयास को केवल चार वर्ष ही हुए थे। पर इस छोटी आयु में ही बीजापुर की काफी बड़ी सेना को हराने के कारण उनमें और उनके साथियों में बड़ा आत्मविश्वास आया था। मुगलों का भय दिखाकर जिस तरह उन्होंने अपने पिता को कैद से छुड़ाया था उससे यह सिद्ध हो गया था कि वे कूटनीति के भी मँजे हुए खिलाड़ी हैं। पर बीजापुर के सुलतान ने शहाजी को सम्मान सहित मुक्त किया था लेकिन उनको

कर्नाटक नहीं भेजा था, अपने पास बीजापुर ही रख छोड़ा था। अगर शिवाजी किसी नए प्रदेश को लेते तो पिता पर फिर संकट आ सकता था।

सम्भवतः इसीलिए कुछ वर्ष तक वे शान्त रहे। इस समय का उपयोग उन्होंने जो प्रदेश जीता था उसका उचित प्रबन्ध करने में और भविष्य के लिए तैयारी करने में किया। राजगढ़ का निर्माण लगभग पूरा हो चुका था। सेना भी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। उनके प्रदेश में सुव्यवस्था और शान्ति के कारण लोग सुखी थे। न्याय में कोई पक्षपात न होता था।

लगभग 1648 ई० में उन्होंने छत्रपति की उपाधि धारण की। यह उपाधि नई न थी और सम्भवतः इसको धारण करने के पहिले और अपने मंत्रिमण्डल के अष्टप्रधानों के नाम निश्चित करने के लिए प्राचीन ग्रन्थों का आधार भी लिया गया था। इसी के साथ उन्होंने मुसलमान शासकों के दरबारों में जो ओहदे थे उनको भी संस्कृत रूप देकर अपने दरबार में कायम किया। महत्व के कागज पत्रों पर उनकी अपनी मुहर लगती थी। इस पर संस्कृत में लिखा था।

प्रतिपच्चंद्ररेखेव वर्धिष्णुर्विश्व वंदिता।
शहासूनोः शिवस्यैषा मुद्रा भद्राय राजते॥

अर्थात् "शहा के पुत्र शिव की यह मुहर (जनता के) कल्याणकारी कार्य में लगाई जाती है। शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह इसकी वृद्धि होगी और सारे संसार में इसका आदर होगा।"

शिवाजी जानते थे कि बीजापुर का सुलतान उनके राज्य को नष्ट करने के लिए आक्रमण अवश्य करेगा। वे स्वतः भी जितना उन्होंने जीत लिया था उतने पर सन्तोष करके बैठने वाले न थे। बीजापुर की सेना से मुकाबला करने के लिए वे चुपचाप तैयारी कर रहे थे। 1653 ई० के लगभग सुलतान ने शहाजी को फिर कर्नाटक भेज दिया। शिवाजी को अब इस ओर से कोई डर न रहा।

स्वराज्य की स्थापना का कार्य आरम्भ किए लगभग नौ वर्ष हो चुके थे। पौधा जड़ पकड़ने लगा था। पर उसको रौंदने के लिए भी बहुत लोग तैयार थे। उसको बचाना था, लहू से सींचकर उसकी रक्षा करनी थी, जिससे यह बढ़े और फले-फूले। पेड़ लगाना कठिन था तो उससे कहीं अधिक कठिन यह काम था।

कोंकण विजय

अब तक सभी प्रमुख देशमुखों ने शिवाजी की छत्रपति उपाधि और उनके छत्रपति पद को स्वीकार कर लिया था। एक ही अपवाद थे जावली के मोरे। जावली पूना के दक्षिण में वाई के तीर्थ-स्थान के पास है। कोंकण को जाने का मार्ग यहीं से है। यहाँ दुर्गम जंगल और ऊँचे पहाड़ मानो आक्रमणकारी के विरुद्ध बचाव की लड़ाई के लिए ही बनाए गए हों। शिवाजी यह सब जानते थे। मोरे परिवार बड़ा शक्तिशाली था और उससे वे मित्रता करना चाहते थे। उन्हें प्रारम्भ में सफलता भी मिली। पर 1946 के लगभग मोरे कुल के प्रमुख जिन्हें चन्द्रराव की उपाधि थी मर गए। उन्हें कोई पुत्र न होने के कारण उत्तराधिकार का सवाल उठ खड़ा हुआ। मृत चन्द्रराव की पत्नी ने अपने परिवार के एक व्यक्ति को गोद लिया। ये नए चन्द्रराव बीजापुर के सुलतान का उपकार मानते थे और इस कारण उन्होंने शिवाजी के मैत्री के प्रस्तावों को ठुकरा दिया।

शिवाजी बड़े असमंजस में थे। जावली उनके लिए महत्वपूर्ण स्थान था। उसे शत्रु के अधिकार में रहने देना खतरे से खाली न था। साथ ही साथ उसके लिए लड़ाई करना उन्हें पसंद न था क्योंकि ऐसा करना अपने ही बान्धवों के विरुद्ध तलवार उठाना होता। पर नए चन्द्रराव ने मैत्री के प्रस्तावों का जिस अपमान जनक ढंग से उत्तर दिया था उसके कारण उनके लिए इसके अलावा कोई चारा न रह गया। चन्द्रराव ने उनके कुछ प्रदेश पर भी अपना दावा बताना आरम्भ किया। बाध्य होकर शिवाजी को यह समस्या तलवार से सुलझानी पड़ी।

निदान 1656 ई० में शिवाजी की सेना ने जावली पर हमला बोल दिया। जोरदार लड़ाई के बाद उनकी सेना ने जावली जीत ली लेकिन चन्द्रराव बच निकले और पास ही रायरी के किले में चले गए। शिवाजी जावली आए और उन्होंने रायरी पर घेरा डाला। अन्त में चन्द्रराव ने हथियार रख दिए। शिवाजी ने चन्द्रराव का उचित सम्मान किया। लेकिन जब उन्हें पता चला कि वे और उनके दो पुत्र छिपे-छिपे बीजापुर से पत्र-व्यवहार कर रहे हैं तो उन्होंने तीनों का वध करवा दिया।

जावली के इस युद्ध के बारे में शिवाजी पर कई आरोप लगाए जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि जावली विजय में शिवाजी ने धोखाधड़ी से काम लिया। लेकिन इस आक्षेप के समर्थन में प्रायः कोई सबूत नहीं। दूसरा आरोप यह है कि उन्होंने चन्द्रराव का वध करा कर क्रूरता का परिचय दिया। यह आरोप लगाते समय लोग यह भूल जाते हैं कि शिवाजी ने मोरे परिवार से मित्रता स्थापित करने का पूरा प्रयत्न किया था। जिस चन्द्रराव की उन्होंने हत्या की उसे गद्दी दिलाने में भी उनका कुछ हाथ था। पर इस उपकार के बदले में उन्हें मिला उदण्डता से भरा उत्तर। जावली विजय के बाद भी उन्होंने मैत्री स्थापित करनी चाही थी। वध की आज्ञा उन्होंने तभी दी जब उन्हें पता चला कि अन्दर-अन्दर चन्द्रराव बीजापुर से मिले हुए हैं।

जावली और उसके पास का भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश अब शिवाजी के अधीन था। इस प्रदेश में कई किले थे। इनमें प्रमुख था रायरी। उसकी दुर्गमता उन्हें इतनी पसन्द आई कि उन्होंने इसे नए सिरे से बनवाया। इसका नाम पड़ा रायगढ़। रायगढ़ में ही बाद में उनकी राजधानी बनी और यहीं पर उनका राज्याभिषेक भी हुआ था।

रायगढ़ जैसा अजेय दुर्ग अगर उन्हें मिला तो दूसरी ओर उन्हें एक नररत्न भी प्राप्त हुआ इनका नाम था मुरार बाजी देशपाँडे। ये जावली की लड़ाई में शिवाजी के विरुद्ध बड़ी बहादुरी से लड़े थे। शिवाजी इनकी वीरता से मोहित हुए। उन्होंने मुरार बाजी को अपनी बात समझाई, अपना ध्येय और उद्देश्य बताया। वे मान गए और शिवाजी के अनुयाई बन गए। बाद में इन्होंने पुरन्दर की लड़ाई में अपनी आहुति दी।

जावली विजय की खुशी के साथ-साथ शिवाजी को एक दुखदाई खबर भी मिली। उनके बड़े भाई संभाजी कर्नाटक में बीजापुर की ओर से लड़ रहे थे। कनकगिरि के घेरे में वे काम आए। सन्देश किया जाता था कि बीजापुर के एक अन्य सरदार अफ़ज़लखाँ ने ऐन मौके पर उनकी सहायता नहीं की और इसलिए उनकी मृत्यु हुई। जिजाबाई और शिवाजी को मृत्यु से दुःख हुआ पर जिस तरह मृत्यु हुई उस पर क्रोध भी आया। इस घटना के कुछ ही समय बाद 14 मई, 1657 को शिवाजी की पत्नी सई-बाई को पुत्र हुआ। मृत ताऊ की याद में युवराज का नाम रखा गया सम्भाजी।

इस समय दक्षिण में काफी उथल-पुथल हो रही थी। बीजापुर के सुलतान मुहम्मद आदिलशाह की 1656 में मृत्यु हो चुकी थी और उनकी जगह अली आदिलशाह गद्दी पर बैठे थे। दक्षिण में इस समय मुगल सूबेदार थे औरंगजेब। उन्होंने यह बहाना बनाया कि अली आदिलशाह स्वर्गीय सुलतान के पुत्र नहीं हैं और इसलिए वह गद्दी के उत्तराधिकारी कभी नहीं हैं। मुगलों ने इस बहाने से बीजापुर पर हमला बोल दिया। शिवाजी ने जब देखा कि मुगल और बीजापुर आपस में उलझे हुए हैं तो उन्होंने इस स्थिति से पूरा लाभ उठाया। उन्होंने अचानक जुन्नर और अहमदनगर पर हमला बोल दिया। ये दोनों स्थान मुगलों के कब्जे में थे। इन जगहों की लूट से उन्हें बड़ा धन मिला। इससे औरंगजेब बड़े नाराज़ हुए। पर वे कर कुछ न सकते थे। शाहजहाँ की बीमारी की उन्हें खबर मिल चुकी थी और वे इस जल्दी में थे कि उत्तर भारत जाकर मुगल सिंहासन पर कब्जा कर लें। इस कारण जब शिवाजी ने उन्हें यह आश्वासन दिया कि वे फिर मुगलों के प्रदेश को न लूटेंगे तो औरंगजेब ने सन्तोष कर लिया। उत्तर भारत जाने के पहले उन्होंने बीजापुर के साथ सन्धि कर ली लेकिन अपने सरदारों को आदेश दिया कि वे शिवाजी की गतिविधि पर पूरी चौकसी रखें। भविष्य में खतरा बीजापुर से नहीं शिवाजी से है यह मानों वे समझ गए थे।

शिवाजी केवल जुन्नर और अहमदनगर पर छोटे-मोटे हमले और लूट से ही सन्तुष्ट नहीं हुए। बीजापुर के प्रदेश में तो इस बीच उनकी सेना ने बहुत बड़ी विजय प्राप्त की थी। अब तक उनका सारा प्रयास भूमि तक ही सीमित था। पर समुद्र और नौसेना के महत्व को वे अच्छी तरह जानते थे। उनकी सेना ने उत्तर कोंकण पर हमला किया और उसकी राजधानी कल्याण जीत ली। कल्याण उस समय का महत्वपूर्ण बन्दरगाह था। शिवाजी ने बन्दरगाह और इस प्रदेश के महत्वपूर्ण किलों की मरम्मत कराई और वहाँ अपनी सेना रखी। उनकी सेना ने शीघ्र ही सारा उत्तर कोंकण जीत लिया। स्वराज्य का विस्तार तो हुआ ही साथ-साथ पहली बार उसकी सीमा समुद्रतट तक जा पहुँची।

शिवाजी की कल्याण विजय के सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि जब उनकी सेना ने कल्याण को जीता तो मुसलमान सूबेदार का परिवार बन्दी हो गया। सूबेदार की पुत्र-

वधू बड़ी सुन्दर थी। शिवाजी ने ग्राबाजी सोनदेव को इस प्रदेश का सूबेदार नियुक्त किया था। उन्होंने समझा कि शिवाजी भी उस समय के अन्य शासकों की तरह हैं। इसलिए उन्होंने इस महिला को शिवाजी के पास भेंट स्वरूप भेज दिया।

पर परिणाम बिलकुल उलटा हुआ। शिवाजी तो पराई स्त्री को माँ के समान मानते थे। जब यह महिला लाई गयी तो कहते हैं उन्होंने कहा, "अगर मेरी मां इतनी सुन्दर होती मैं भी ऐसा सुन्दर होता।" वे आबाजी पर बड़े नाराज हुए कि स्त्रियों के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करने के उनके आदेश का क्यों पालन नहीं किया गया। उन्होंने सूबेदार की पुत्रवधू को पूरे सम्मान के साथ उसके परिवार के पास पहुँचा दिया।

उत्तर कोंकण की विजय के बाद शिवाजी ने दक्षिण कोंकण पर मुहिम खोल दी। इस मुहीम का संचालन उन्होंने स्वत: किया था। रत्नागिरी और उसके पास का प्रदेश उन्होंने जीता। छ: सात महीनों के अन्दर ही कोंकण विजय और दूसरी ओर जुन्नर और अहमदनगर जैसे मुगलों के महत्वपूर्ण अड्डों को लूट लेना हिम्मत और रण कुशलता के बिना कैसे सम्भव हो सकता था ?

उसी मुहीम में उन्होंने विदेश में बनी एक अच्छी तलवार प्राप्त की। अपने इष्ट देवता के नाम पर उन्होंने उसका नाम रखा, 'भवानी'।

कोंकण विजय के पहले ही शिवाजी ने समुद्र तट पर विजय दुर्ग बनवाया था। कोंकण विजय के बाद उन्होंने सुवर्ण दुर्ग और सिंधुदुर्ग बनवाए। बम्बई के पास कुलाबा का नाविक अड्डा 1680 में उनकी मृत्यु के पहिले तैयार हो चुका था। ये अड्डे उनकी नौसैना का आधार बने। कोंकण विजय के बाद ही उन्होंने नौसेना का निर्माण आरम्भ कर दिया था। सन् 1659 में गोआ के पुर्तगाली गवर्नर ने अपने राजा को लिखा था कि शिवाजी ने बसई और चौल के पास के इलाके पर कब्जा कर लिया है तथा भिवन्डी, पनवेल और कल्याण में युद्धक जहाज भी बनवाए हैं।

प्रतापगढ़ का युद्ध—अफजलखाँ का वध

शिवाजी की कोंकण विजय के बाद बीजापुर का दरबार इस नये खतरे की ओर सजग हुआ। उत्तर भारत में औरंगजेब और उनके भाइयों के बीच उत्तराधिकार की लड़ाई छिड़ गई थी और उस ओर से तत्काल कोई डर न था। पर मुगल और बीजापुर के झगड़े से लाभ उठाकर शिवाजी ने जिस तरह कोंकण जीत लिया था उसे सुलतान कैसे भूल सकता था।

सुलतान की ओर से कर्नाटक में शहाजी को चिट्ठी गई, 'तुम्हारा लड़का विद्रोह कर रहा है। उसे समझाओ नहीं तो ठीक न होगा।'

शहाजी ने उत्तर दिया, 'मेरा लड़का मेरी बात नहीं मानता। आप जैसा उचित समझें करें।'

अफजल खाँ को शिवाजी पर हमला कर उन्हें सबक सिखाने का काम सौंपा गया। ये बीजापुर के प्रमुख सेनापतियों में थे। अनुशासन के पक्के और धार्मिक दृष्टि से कट्टर। जो काम लड़ाई से न निकले उसे कपट से पूरा करने के लिए ये प्रसिद्ध थे। कर्नाटक में, शिरेपट्टण का राजा कस्तुरी रंग जब लड़ाई में जीता न जा सका तो उन्होंने उसे संधि वार्ता के लिए निमंत्रण भेजा। जब वह आया तो उसकी हत्या करवा दी। बीजापुर के प्रधान सेनापति खान मुहम्मद की भी इन्हीं की शिकायत के कारण हत्या की गई थी। अजफलखाँ और शहाजी सहयोगी थे पर उन्हें गिरफ्तार करने की प्रेरणा इन्हीं की थी। उन्हें बन्दी बनाकर बीजापुर ले आने का काम भी अफजलखाँ को ही सौंपा गया था। शहाजी के बड़े पुत्र संभाजी की मृत्यु के बारे में भी यह सन्देह किया जाता था कि अफजलखाँ ने जानबूझ कर ऐन मौके पर उनकी सहायता नहीं की थी। भोंसले परिवार से इनका वैर प्रसिद्ध था।

शिवाजी के विरुद्ध अभियान के लिए बीजापुर दरबार ने अफजलखाँ को पूरी सहायता दी। लगभग दस हज़ार घुड़सवार और पैदल सेना के अतिरिक्त हाथी, घोड़े और तोपें उन्हें दी गईं। सभी देशमुखों को भी सहायता करने के फर्मान जारी हुए। धन की भी कोई कमी न थी। पर इससे बहुमूल्य तो उन्हें दी गई सलाह थी। बीजापुर की राजमाता ने उन्हें कहा था कि दोस्ती का बहाना बना शिवाजी को कैद कर लो।

बीजापुर से फौज चल चुकी है यह पता चलते ही शिवाजी राजगढ़ से प्रतापगढ़ आ गए। अफजलखाँ और शिवाजी प्रतापगढ़ और जावली के इस क्षेत्र के सामरिक महत्व को अच्छी तरह जानते थे। बचाव की लड़ाई के लिए यहाँ ऊँचे पहाड़ और घना जंगल अत्यन्त उपयुक्त है। अफजलखाँ नहीं चाहते थे कि शिवाजी इनमें आश्रय लें क्योंकि वहां से उन्हें निकालना असंभव होता। पर शिवाजी भी इस बात को भली भांति जानते थे और अफजलखाँ के आक्रमण की सूचना मिलते ही उन्होंने प्रतापगढ़ को अपना केन्द्र बनाया।

अफजलखाँ सितम्बर 1659 में बीजापुर से चले । तुलजापुर और पंढरपुर के तीर्थों को उन्होंने भ्रष्ट किया और वाई के तीर्थ में आकर खेमा गाड़ा । प्रतापगढ़ यहाँ से लगभग पचास किलोमीटर है । अफजलखाँ ने पंढरपुर और तुलजापुर जैसे प्राचीन तीर्थों में अत्याचार किए उनसे शिवाजी को बड़ा क्रोध आया । पर वे जानते थे कि यह चाल है उनको मैदान में निकालने की । मैदानी लड़ाई में अफजलखाँ की सेना उनको बड़ी आसानी से हरा सकती थी । इसलिए वे चुप रहे ।

अफजलखाँ के आक्रमण से सारा महाराष्ट्र चिंतित था । उनकी वीरता, कपटनीति उनकी बड़ी सेना इन सबके कारण हर जबान पर एक ही प्रश्न था, "अब क्या होगा ? महाराज इस शत्रु से कैसे निपट पाएंगें ? अभी-अभी तो स्वराज्य का पौधा जड़ पकड़ने लगा है, क्या वह असमय में ही रौंद डाला जाएगा ?" स्वयं छत्रपति के निकटतम सहचर भी चिंतित थे । वे समझते थे अफजलखाँ से लड़कर जीतना असंभव है । उससे सुलह कर लेनी चाहिए । पर शिवाजी को अफजलखाँ का स्वभाव और जीवन मालूम था । कपट में वे कितने पटु हैं यह उन्हें ज्ञात था । पिता का अपमान और भाई की मृत्यु में इन्हीं का तो हाथ था ! उन्होंने कहा, जो इसने मेरे बड़े भाई के साथ किया वही मेरे साथ भी करेगा । इसके साथ सन्धि करना प्राण देना है । जीत हो तो ठीक और अगर लड़कर मरूँ तो नाम होगा ।

इधर अफजलखाँ के सामने दूसरी ही समस्या थी । प्रतापगढ़ जीत कर शिवाजी को वन्दी बनाना लगभग असंभव था । पता नहीं कितने लोग मारे जाएँ । क्यों न कपट से काम निकाला जाए ? उसने शिवाजी के पास सन्देश भेजा, सारा प्रदेश लौटा दो । शहाजी की और अपनी मित्रता की याद दिलाई, वादा किया कि मैं सुलतान से तुम्हारी सिफारिश करूँगा भेंट के लिए वाईं में अपनी छावनी में निमंत्रण दिया ।

इस प्रकार दोनों पक्ष चाहते थे कि यह मसला कूटनीति से हल हो तो अच्छा है । शिवाजी को वाई बुलाने में अफजलखाँ के मन में कपट न था, यह कहने वाले खाँ का चरित्र भुला देते हैं । शिवाजी जानते थे कि वाई जाकर खाँ की छावनी में भेंट करने के माने स्वत: को अजगर की कुण्डली में डालना है, वह जब चाहे मसल दे ।

अफजलखाँ का सन्देश लेकर उनके वकील कृष्णाजी भास्कर प्रतापगढ़ आए थे । शिवाजी ने उनका उचित सत्कार किया और उनके साथ खाँ के लिए सौगातें भेजीं । उनका उत्तर लेकर गए उनके वकील पन्ताजी गोपीनाथ बौकिल । जिस बनावटी सद्भावना से अफजलखाँ का सन्देश भरा था, वैसी ही भावना से उत्तर भी ओतप्रोत था । शिवाजी ने कहा था, 'उद्दण्डता के कारण मैं जिस संकट में फंसा हूँ उससे खाँ साहब ही मुझे उबार सकते हैं । उनका पराक्रम किसे नहीं मालूम । मेरे लिए तो वे पिता जैसे हैं । बीजापुर के सुलतान से सिफारिश करने के लिए वे तय्यार हैं यह उनकी मेहरबानी है । उनकी आज्ञा के अनुसार मैं सारा प्रदेश सौंपकर बीजापुर की नौकरी करने के लिए तय्यार हूँ ।' पन्तजी ने खां से कहा कि विश्वास तो दोनों तरफ से होता है । शिवाजी उनका पूरा विश्वास करते हैं और खाँ को भी इसी तरह शिवाजी का पूरा विश्वास करना चाहिए । खाँ से वाई आकर मिलने में शिवाजी को भय लगता है, वे क्यों नहीं जावली जाकर शिवाजी से मिलते और उनके भय को दूर करते ?

दोनों ओर से इसी ढंग के सन्देशों का आदान-प्रदान होता रहा । शिवाजी के वकील अब तक इस बात को भाँप गए थे कि अफजलखाँ के मन में कपट है । वे बार-बार आग्रह करते रहे कि भेंट वाई में नहीं जावली में हो । उनके इस आग्रह, शिवाजी को बिना लड़ाई के ही वन्दी बनाने का स्वप्न और अपनी शक्ति का घमण्ड इन सबका परिणाम यह हुआ कि अफजलखाँ जावली जाने पर राजी हो गए । जब उनके कुछ अधिकारियों ने कहा कि जावली के घने जंगल में इतनी बड़ी सेना लेकर जाना ठीक नहीं, तो उन्होंने कायर कहकर उनकी हँसी उड़ाई ।

हाथी, घोड़े, ऊँट वड़ी-वड़ी तोपों से सुसज्जित वीजापुरी फौज लेकर अफजलखाँ चल पड़े ऊँचे पर्वत की ओर। मैदानी इलाकों से अभ्यस्त इनकी सेना के लिए घने जंगल, सँकरे पहाड़ी रास्ते और जावली पार करना वड़ा कष्टप्रद था। पर लालच भी वड़ा था—शिवाजी को पकड़ने का और वीजापुर राज्य पर आया संकट दूर कर वाहवाही लूटने का।

अफजलखाँ पका रहे थे ख्याली पुलाव। उधर सारे महाराष्ट्र में चिन्ता व्याप्त थी। मन्नतें मांगी जा रही थीं कि कपटकला निपुण खाँ के हाथों शिवाजी का अनहित न हो। वीजापुर दरवार खाँ की कार्रवाई को उत्सुकता से देख रहा था। उसे वड़ी आशा थी सफलता की। अन्य लोग भी, वम्वई में अंग्रेज़, गोआ में पुर्तगाली और मुगल, कूतूहल से देख रहे थे कि वीजापुर का यह अभियान किस हद तक सफल होगा।

प्रतापगढ़ पर तो वातावरण में चिन्ता और आत्मविश्वास का अजीव-सा मिलाप था। तानाजी, येसाजी, आदि सव साथी एकत्र थे। नहीं थे केवल सरनौवत पालकर। वे शिवाजी की छोटी सेना लेकर प्रतापगढ़ के वाहर महावलेश्वर के जंगलों में थे। वाहर से खाँ की प्रगति और उनकी सेना के वारे में समाचार आ रहे थे। प्रत्येक आदमी सजग था, काम करता था पर उसके मुख पर यह विना पूछा सवाल था, 'क्या होगा अव ?'

इन सवके वीच थे स्वतः शिवाजी। वे जानते थे कि वे अपने जीवन की, अपने सर्वस्व की वाजी खेल रहे हैं। वाहर से उन्हें आशादायक समाचार मिल रहे थे। उनके प्रदेश के लगभग सभी देशमुखों ने वीजापुर के फर्मान ठुकरा दिए थे और उनका साथ देने का निश्चय किया था। लोग चाहते थे, मनाते थे कि उनकी विजय हो। उनके मन पर यह वोझ तो था ही, दूसरा वहुत वड़ा शोक भी था। कुछ ही समय पहिले उनकी प्रिय पत्नी सईवाई तीन महीने के युवराज संभाजी को मातृहीन वनाकर स्वर्ग सिधार गई थीं। पुत्र दूर था राजगढ़ में। उसकी चिन्ता और पत्नी वियोग का शोक मनाने का भी समय न था।

अफजलखाँ की सेना जावली पहुँच गई। भेंट की जगह निश्चित की गई प्रतापगढ़ के नीचे। तय हुआ कि खाँ अपनी सेना छावनी में छोड़कर दस सिपाहियों के साथ भेंट के लिए आएंगे। शिवाजी भी इसी प्रकार दस सिपाहियों के साथ प्रतापगढ़ से निकलेंगे। पर ये सिपाही भेंट के स्थान से कुछ दूर रहेंगे, साथ में केवल प्रत्येक पक्ष के दो तीन ही व्यक्ति रहेंगे। अफजलखाँ और शिवाजी सशस्त्र होंगे।

दोनों पक्ष एक दूसरे पर अविश्वास करते थे इस कारण भेंट की सारी वातें काफी विस्तार के साथ निश्चित की गई थीं। खाँ के सिपाहियों ने भेंट के स्थान का, आसपास के प्रदेश का और शिवाजी ने भेंट के लिए जो शामियाना लगवाया था उसका, अच्छी तरह निरीक्षण किया। भेंट की तिथि निश्चित हुई 10 नवम्वर, 1659।

भेंट के पहले की रात वड़ी देर तक प्रतापगढ़ में मन्त्रणा होती रही। खाँ दगा करेगा, यह शंका सभी को थी। अगर शिवाजी की जान चली जाए या वे वन्दी वना लिए जाएँ तो राज्य कैसे चलाया जाए, इस सम्वन्ध में भी विचार हुआ। शिवाजी के सभी अनुचर एकत्र थे, चिंतित थे अपने प्रिय सखा और राजा के वारे में। शिवाजी ने सवका काम वाँट दिया : उन्होंने अपनी सेना टुकड़ियों में वाँट दी। तानाजी मालुसरे, येसाजी कंक, नेताजी पालकर, कान्होजी जेधे, सभी वीर, विश्वासपात्र थे। उनसे कहा गया आप भेंट की जगह से दूर, मौके के स्थान छेंक कर अफजल खाँ की छावनी घेर कर वैठ जाइए विलकुल, चुपचाप। अगर भट मैत्रीपूर्ण वातावरण में होती है तो ठीक। नहीं तो प्रतापगढ़ से तोप दाग कर तुम्हें संकेत दिया जायेगा। संकेत मिलते ही टूट पड़ना शत्रु पर। वच कर न जाने पाए वह जावली के जंगल से।

भेंट के लिए शिवाजी केवल दस ही आदमी साथ ले जा सकते थे : उनका हर सरदार साथ जाना चाहता था। उन्होंने जो दस व्यक्ति चुने वे सभी उनके परमभक्त और वीर थे। उनमें येसाजी और कोण्डा जी कंक आदि मराठों के अलावा सिद्दी इब्राहीम भी थे। उनके अनुयायी मुसलमान भी थे इसका इससे अच्छा और क्या सबूत हो सकता है ? शिवाजी भेंट के लिए तैयार हुए। उन्होंने जिरह बख्तर पहना। उस पर डाला जरी का का कुर्ता और अंगरखा। सिर पर बख्तर का टोप पहिन कर उस पर पगड़ी बाँधी। पगड़ी पर मोतियों की कलगी लगाई। भवानी तलवार तो थी ही एक पंजे में बघनखा पहना और दूसरे में लिया विछुआ। ये दोनों बचाव के हथियार थे।

अफजलखाँ को भेंट के शामियाने में ले आने के लिए पन्ताजी गोपीनाथ गए थे। वहाँ उन्होंने देखा कि खाँ के साथ चलने के लिए डेढ़ हजार आदमी तैयार हैं। उनके कान खड़े हो गये। यह तो गलत है। तय तो हुआ था कि केवल दस आदमी रहेंगे। कपट का सन्देह पक्का हो गया। उन्होंने खाँ से कहा, 'इतने आदमी ले जाने से तो शिवाजी प्रतापगढ़ के बाहर ही नहीं निकलेंगे।' अफजलखाँ मान गए।

भेंट का शामियाना बहुत ठाठ से बनाया और सजाया गया था। अफजलखाँ वहाँ पहले पहुँच गए। अंगरक्षक थोड़ी ही दूर बाहर खड़े रहे। शिवाजी और उनके साथी प्रतापगढ़ से निकले। अंगरक्षकों को दूर छोड़ जब शिवाजी खेमे के अंदर दाखिल हुए तो अफजलखाँ उठ खड़े हुए। दोनों में कुछ बातचीत भी हुई जिसमें अफजलखाँ ने शिवाजी को विद्रोह करने पर ताना दिया। उसने शिवाजी से कहा, 'आओ। पहले गले मिल लो।'

शिवाजी आगे बढ़े। खाँ का कद लम्बा और शरीर भारी भरकम था। अपनी शक्ति के लिए वह प्रसिद्ध था। गले मिलने का उसका आग्रह कहीं वैसा ही तो न था जैसा धृतराष्ट्र ने महाभारत के युद्ध के बाद भीम को गले लगाने में दिखाया था ?

पर अब कोई चारा न था। शिवाजी आगे बढ़े। खाँ बाँहें फैलाकर खड़े थे आलिंगन के लिए। उन्होंने शिवाजी को बाँहों में भर लिया और·····और दूसरे ही क्षण इस प्रेम के नाटक का पर्दाफाश हो गया। शिवाजी का सर अफजलखाँ की बगल तक पहुँचता था। उन्होंने बाँह में सिर दबा लिया और दूसरे हाथ से शिवाजी के पेट में कटार घोंपने का प्रयास किया।

यह सब एक क्षण में ही हो गया। खाँ की कटार से शिवाजी का कुर्ता और अंगरखा फट गया पर उन्होंने दूर-दृष्टि से जो जिरहबख्तर पहिन रखा था उसके कारण कटार अधिक कुछ न कर सकी। पर उनकी गर्दन अब भी खाँ ने दबा रखी थी। कटार का वार निष्फल हो रहा हैं यह देख खाँ और कुछ करे इसके पहले ही शिवाजी ने पूरी ताकत से अपना बघनखा उनके पेट में घुसेड़ दिया। पेट फाड़ डाला अंतड़ियाँ बाहर निकल आई और अफजलखाँ धराशायी हो गए।

तब तक बाहर के लोगों को भी पता चल गया था कि अन्दर कुछ गड़बड़ा हो गयी है। खेमे के अंदर खाँ के वकील कृष्णाजी भास्कर थे। उन्होंने शिवाजी के मना करने पर भी जब आक्रमण किया तो वे शिवाजी के हाथों मारे गए। खाँ के अंगरक्षक सय्यद वन्दा का काँटा शिवाजी के अंगरक्षक जिवा महाला ने दूर किया। इसके बाद तो दोनों ओर के अंगरक्षकों में खुल कर लड़ाई हुई। इस गड़बड़ी का लाभ उठाकर अफजलखाँ उठ खड़े हुए। वे पालकी में बैठ गए और पालकी वाले उन्हें ले जाने लगे। संभाजी कावजी ने यह देखा। उन्होंने पलकी वालों को जख्मी किया और अफजलखाँ का सिर काट लिया। खाँ के साथ आए हुए दसों अंगरक्षक खेत रहे। शिवाजी का एक भी अंगरक्षक नहीं मारा गया।

शिवाजी और उनके साथी अफजलखाँ का सर लेकर प्रतापगढ़ चले गए। शीघ्र ही प्रतापगढ़ से तोपें गरज उठीं। मराठा सरदारों को संकेत मिला कि भेंट में गड़बड़ी हुई। तानाजी मालुसरे, नेताजी



पालकर. कान्होंजी जेधे, मोरोपन्त, पिंगले आदि सरदारों की टुकड़ियां मौके पर पहले से ही तैयार बैठी थीं। उन्हें हुक्म था कि तोपों की गर्जना सुनते ही शत्रु पर टूट पड़ो। जो हथियार रख दे उसे मत मारो। जो लड़े उसे छोड़ो नहीं। उधर बीजापुर की सेना अपनी छावनी में पड़ी थी बिना लड़ाई के शिवाजी को बन्दी करने के स्वप्न में बेखबर।

तोपों की गर्जना के साथ ही मराठों ने हमला बोल दिया। हर टुकड़ी को क्या करना है पूरी तरह मालूम था। बीजापुर की सेना बिल्कुल ही तैयार न थी। मराठों को जावली के जंगल का चप्पा-चप्पा मालूम था। बीजापुर की सेना मैदान की लड़ाई के लिए अभ्यस्त थी, जंगल की लड़ाई में नहीं। मराठे लड़ रहे थे अपने राज्य के लिए तो बीजापुर का सिपाही लड़ रहा था केवल वेतन के लिए। मराठों के हमले की उग्रता के कारण बीजापुर की सेना के पैर जम न पाए। वह भाग खड़ी हुई। पर भागें कैसे ? रास्ते तो सब मराठों ने रोक रखे थे। जिन्होंने हथियार रख दिए केवल वे ही बच सकें।

अफजलखाँ मारे गए थे, उनका एक लड़का फाजल खाँ जख्मी हो गया था और बड़ी मुश्किल से ही निकल पाया था। खाँ के दो लड़के और कई अन्य प्रमुख व्यक्ति बन्दी हो गए थे। शिवाजी ने उनका स्वतः स्वागत किया, उन्हें सहानुभूति दी, दवादारू कराई और उनके साथ ठीक बरताव करने का आदेश दिया। इसी तरह अफजलखाँ के सिर और धड़ का भी उन्होंने पूरा सम्मान किया। वैर तो मृत्यु के साथ समाप्त हो गया था। शिवाजी ने अन्त्येष्ठि के सम्बन्ध में आदेश दिए। अफजलखाँ की कब्र प्रतापगढ़ के मुख्य द्वार के पास है। कैदियों के साथ उचित व्यवहार और मृत शत्रु का उचित आदर ये उस समय के समाज के लिए नई बातें थीं। लड़ाई की कटुता के बीच भी शिवाजी मानवोचित गुणों को भूले नहीं थे।

जावली के जंगल से जान बचाकर फाजल खाँ और कुछ अन्य लोग वाई पहुँचे। वे जानते थे कि पीछा करने वाले मराठे वाई पर भी हमला करेंगे। फाज़ल खाँ ने वाई की सेना को फौरन निकल भागने का आदेश दिया। वे पूरी तरह भाग भी न सके थे कि मराठे आ पहुँचे। नेताजी पालकर के सिपाहियों ने अफजलखाँ की सेना की छावनी पर कब्जा कर लिया। वे दौड़-पड़े फाज़ल खाँ के पीछे पर रात के अंधेरे में फाज़ल खाँ निकल भागा। जावली और वाई की बीजापुर सेना की छावनियों से मराठों को बड़ी लूट मिली। पैंसठ हाथी, हजारों घोड़े और ऊँट, तोपें, बन्दूकें, हथियार, सोना क्या कुछ नहीं मिला ?

पर सबसे बड़ी बात यह थी कि शिवाजी को बन्दी बनाकर बीजापुर ले जाने की प्रतिज्ञा करने वाली अफजलखाँ की सेना लगभग नष्ट हो गई थी। बीजापुर में जहाँ इस बात से शोक छा गया तो महाराष्ट्र के घर-घर में खुशी मनाई गई।

शिवाजी बीजापुर की सेना के विरुद्ध इतनी बड़ी विजय प्राप्त कर चुप न बैठे। सेना पूरी तरह विश्राम भी न ले सकी थी कि वह निकल पड़ी उस सारे प्रदेश को जीतने के लिए जो अफजल खाँ के आक्रमण क कारण हाथ से निकल गया था। यह काम उसने विद्युत गति से एक ही दिन में पूरा कर लिया। बीजापुर की सेना के कुछ प्रमुख सरदार भी अपनी टुकड़ियों के साथ वाई में शिवाजी से जा मिले। इनमें एक थे सिद्दी हिलाल जिन्होंने शिवाजी की सेना में बड़ा यश कमाया।

पर अब भी मराठे सन्तुष्ट न थे। अपना सारा प्रदेश पुनः जीत लेने के बाद शिवाजी और नेताजी के नेतृत्व में मराठा सेना घुस पड़ी बीजापुर के प्रदेश में। केवल पन्द्रह दिन के अन्दर उसने लगभग दो सौ किलोमीटर की गहराई तक बीजापुर का प्रदेश पादाक्रान्त किया। शिवाजी वाई से निकल कर कोल्हापुर पहुँचे। रास्ते में जितने किले पड़ते थे वे उन्होंने जीत लिए। कोल्हापुर से कुछ ही दूर पन्हाला का सुदृढ़ दुर्ग है। शिवाजी ने आनन-फानन उसे भी सर किया। साथ-साथ नेताजी पालकर भी दूसरे मोर्चे पर विजय प्राप्त कर रहे थे। उधर कोंकण में एक तीसरी सेना आगे बढ़ रही थी।

बीजापुर में तहलका मच गया। कहाँ तो शिवाजी के स्वराज्य को मटियामेट करने के मन्सूबे थे और कहाँ अब प्रश्न था शिवाजी के आक्रमण से कैसे रक्षा की जाए? जो केवल 13 दिन में वाई से कोल्हापुर पहुँच सकता है, उसके लिए कोल्हापुर से बीजापुर पहुँचने में क्या देर लगेगी? अन्तर ही कितना है?

अफजलखाँ के पुत्र फाजल खाँ और एक अन्य सरदार रुस्तम जमाँ के नेतृत्व में बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को रोकने के लिए सेना भेजी। कोल्हापुर के पास हुई लड़ाई में शिवाजी ने इन दोनों को करारी हार दी। मराठों के आगे बीजापुरी फौज टिक न सकी। फाजलखाँ और रुस्तम जमाँ जान बचाकर भाग निकले। चारों ओर मराठों ने बीजापुर की सेना में त्राहि-त्राहि मचा दी। गोआ के पुर्तगाली गवर्नर ने इस समय अपने राजा के पास एक रिपोर्ट भेजी थी उसमें कहा था, 'अगर हालत ऐसी ही रही तो शिवाजी सारा बीजापुर राज्य ही जीत लेंगे।'

बीजापुर और मुगलों की साँठगाँठ—बाजी प्रभू का बलिदान

शिवा जी जानते थे कि अफजलखाँ के वध क बाद बीजापुर का सुलतान उनको नष्ट करने के लिए जोरदार प्रयत्न करेगा। हुआ भी ऐसा ही। सुलतान ने शिवाजी पर आक्रमण करने का काम सौंपा सिद्दी जौहर पर। अब तक दरबार में इनकी उपेक्षा ही होती थी यद्यपि ये बड़े वीर और कुशल सेनापति थे। उन्हें उपाधि दी गई सलावत खाँ की। आक्रमण के लिए इन्हें पर्याप्त सेना दी गई। रुस्तम जमाँ, फाजल खाँ बाजी घोरपड़े आदि सरदार दिए गए सहायता के लिए।

उधर दिल्ली में भी परिस्थिति बदल चुकी थी। औरंगजेब की सत्ता स्थिर हो चुकी थी। दक्षिण में जब वे सूबेदार थे तभी वे समझ गए थे कि दक्षिण विजय के पुराने मुगल मन्सूबे में बाधक बीजापुर गोलकुण्डा नहीं शिवाजी हैं। पर जब तक वे उत्तर भारत में मुगल गद्दी के लिए भाइयों से उलझे रहे तब तक कुछ न कर सकते थे। ऊपर-ऊपर से वे शिवाजी और बीजापुर दोनों से मित्रता दिखाते थे और एक दूसरे से युद्ध के लिए उन्हें प्रोत्साहन देते रहे। आपस में लड़कर दोनों कमजोर हों तो अच्छा ही है। पर अब वे सिंहासन पर जम गए थे। अफजलखाँ के वध से उन्हें यह विश्वास भी हुआ कि शिवाजी अधिक शक्तिशाली हो रहे हैं। हो सकता है कि बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को कुचलने में उनसे सहायता भी माँगी हो।

कारण कुछ भी हो पर हुआ यह कि जब बीजापुर दरबार ने सिद्दी जौहर के नेतृत्व में शिवाजी पर नया आक्रमण किया तो लगभग इसी समय दक्षिण में नए मुगल सूबेदार नियुक्त हुए शाइस्ता खाँ। यह औरंगजेब के मामा थे और इन्हें आदेश दिया गया था शिवाजी का सारा प्रदेश और किले जीतने का। शिवाजी ने इनके पास सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जब वे कुछ नरम पड़े तो औरंगजेब ने उन्हें सन्धि करने से मना किया। शिवाजी के विरुद्ध अभियान में शाइस्ता खाँ की सहायता के लिए उन्होंने महाराज जसवन्त सिंह को भी भेजा।

इस प्रकार सन् 1660 में शिवाजी को एक साथ दो मोर्चों पर दो प्रबल शत्रुओं से मुकाबला करना पड़ा। उनकी सेना तो इतनी छोटी थी कि एक से भी न निपट सकती थी। मुगल और बीजापुर की सेना थी लगभग डेढ़ लाख तो इसका मुकाबला करने के लिए मराठा सेना थी केवल पन्द्रह बीस हजार।

मुगल सेना शिवाजी के राज्य को लूटती रौंदती आगे बढ़ी। मराठे नजर तो न आते थे पर बराबर छिटफुट हमले कर इस सेना को सता रहे थे। एक बार तो उन्होंने शाइस्ता खाँ की छावनी पर ही छापा मारा। शाइस्ता खाँ पूना पहुँच गए और उन्होंने डेरा डाला लाल महल में जहाँ शिवाजी का बचपन बीता था। आस-पास का सारा प्रदेश मुगलों ने जीत लिया। केवल एक छोटा किला बाकी था—

चाकण उर्फ संग्राम दुर्ग। नासिक से पूना आने वाले मार्ग होने के कारण यहाँ से मराठे शाइस्ता खाँ की रसद रोक सकते थे। मुगलों ने इस छोटे से किले पर घेरा डाला। किले के अन्दर थे थोड़े से सिपाही चाकण के किलेदार ने पचपन दिन तक प्रतिकार किया पर अन्त में उन्हें किला सौंप देना पड़ा। बीस हजार सेना से कितनी देर लड़ा जा सकता था ? समर्पण की शर्त यह थी कि मुगल सेना मराठों को हथियार देकर सम्मान सहित किले से निकल जाने देगी।

मुगल फौज के इस आक्रमण से पूना के आसपास का प्रदेश त्रस्त था। मराठों का राज्य कुछ किलों पर ही रह गया था। राजमाता जिजाबाई राजधानी राजगढ़ में थीं।

पर छत्रपति शिवाजी ? वे कहाँ थे संकट की इस घड़ी में ? जब उनको मुगलों और बीजापुर के एक साथ आक्रमण का समाचार मिला तब वे मिरज के किले को जीतने का प्रयास कर रहे थे। उनके स्वराज्य का उत्तरी भाग मुगल आक्रमण के कारण तहस-नहस हो रहा था। वे नहीं चाहते थे कि दक्षिण भाग पर भी ऐसा ही संकट आए। वे जानते थे कि बीजापुर की सेना उनको पकड़ना चाहती है और जहाँ वे जाएंगे पीछे-पीछे आएगी। इस कारण वे चले गए कोल्हापुर के पास के दुर्गम पन्हाला के किले में। उनका विचार था कि बीजापुर की सेना इस किले को घेरा डालकर अधिक दिन बैठ न सकेगी और किला जीतने का विचार त्याग देगी। बरसात में तो तंग आकर वह घेरा उठा ही लेगी। या सरनौबत नेताजी पालकर जो बाहर थे मुगल सेना पर हमला कर घेरा तोड़ डालेंगे।

पर उन्हें निराशा हुई। सन् 1660 के मार्च महीने में सिद्दी जौहर की सेना ने पन्हाला पर घेरा डाला। वह भी इतनी अच्छी तरह कि किले का बाहरी दुनियाँ से सारा सम्पर्क ही टूट जाए। सिंह पिंजड़े में बन्द था। बाहर सियारों ने उत्पात मचा रखा था पर वह कुछ कर न सकता था। राजगढ़ में जिजाबाई बड़ी चिन्ता में थीं। माँ बेटे की मुलाकात को लगभग एक वर्ष हो गया था। पन्हाला के घेरे को तीन महीने बीत चुके थे। बरसात में भी घेरा उठाना न पड़े इसलिए सिद्दी जौहर ने सैनिकों के आवास की व्यवस्था भी कर दी थी। किला जीतने में सहायता के लिए अंग्रेजों ने उसे कुछ तोपें भी दी थीं। पन्हाला कितने दिन टिक सकेगा ? जिजाबाई सोच रही थीं।

उन्होंने सरनौबत नेताजी पालकर को आज्ञा दी कि अपनी फौज लेकर जाओ और पन्हाला का घेरा तोड़कर शिवाजी को निकाल लाओ। सरनौबत अफजलखाँ के बध के बाद से ही बीजापुर के प्रदेश में लड़ रहे थे। एक बार ता वे बीजापुर के बिलकुल पास ही पहुँच गए थे। सेना लगातार छः महीने से लड़ रही थी और थकी थी। पर राजा संकट में है यह पता लगते ही वह चल पड़ी पन्हाला की ओर इस निश्चय के साथ कि जैसे भी हो राजा को छुड़ाएंगे ही। उसका नेतृत्व कर रहे थे नेताजी पालकर और सिद्दी हिलाल।

पर सिद्दी जौहर भी जानता था कि मराठे इस प्रकार हमला कर घेरा तोड़ने का प्रयत्न करेंगे। उसने इस प्रकार व्यवस्था की थी कि बाहरी हमले का मुकाबला करने के लिए पन्हाला के घेरे से एक सिपाही भी हटाना न पड़े। नेताजी और सिद्दी हिलाल ने बड़ा प्रयत्न किया पर वे घेरा तोड़ न सके। लड़ाई में सिद्दी हिलाल का युवा पुत्र मारा गया और मराठों को पीछे हटना पड़ा।

अब घेरे को लगभग चार माह हो चुके थे। बीजापुर की सेना के निश्चय और चौकसी में कमी का कोई चिन्ह न था। शिवाजी चाहते थे बाहर निकलना पर निकलें कैसे ? रास्ता रोक कर तो चालीस हजार फौज खड़ी थी।

जो काम शक्ति से नहीं होता वह युक्ति से हो जाता है। शिवाजी ने सिद्दी जौहर के पास सन्देश भेजा—'मैं स्वत: को और पन्हाला दुर्ग आपको सौंपने को तैयार हूँ।

यह सन्देश पाकर सिद्दी और उसकी सेना में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। बरसात आरम्भ हो गई थी और पन्हाला अब भी अभेद्य था चार महीने के घेरे के कारण सेना भी ऊब गई थी। जो बात इतने प्रयत्न से साध्य न हो रही थी, वह अनायास मिल रही है ? मराठे भूखे मर रहे हैं, दुर्ग सौंप देंगे, इस समाचार से सेना में रंगरेलियाँ मनाई जाने लगीं। चौकसी कम हो गई।

छत्रपति शिवाजी इसी की प्रतीक्षा में थे। रात के अंधेरे में और घनघोर वर्षा में छः सौ सैनिकों के साथ वे किले के बाहर निकले। जासूसों ने उन्हें पहले ही बता दिया था कि किस तरफ घेरा थोड़ा ढीला था। सफलता की खुशी में बेहोश शत्रु की चौकियों को पार कर, मराठा सैनिकों की यह टुकड़ी जंगल के रास्ते एक दूसरे दुर्ग विशालगढ़ की ओर चल पड़ी। विशाल गढ़ पर भी बीजापुर की सेना ने मोर्चा लगाए थे। साठ पैंसठ किलोमीटर की यह दूरी पार करना और विशालगढ़ के नीचे मोर्चे लगाकर बैठी शत्रु की फौज से जूझते हुए किले पर पहुँचना असम्भव लगता था। पर इसे संभव बनाना ही था। दूसरा कोई चारा न था।

शिवाजी और उनके सैनिक पन्हाला की आखिरी चौकी पार कर रहे थे कि बीजापुर की सेना को पता लग गया। फिर क्या था ? पीछा शुरू हो गया। रात के अन्धेरे और घनघोर वर्षा में मराठे जंगल और कीचड़ पार करते पैदल विशालगढ़ की ओर बढ़ पड़े और उनके पीछे लगे थे सिद्दी जौहर के दामाद मसूद और उसके घुड़सवार। एकाएक सिद्दी मसूद को कुछ मराठे एक पालकी ले जाते दिखाई दिए। पालकी कीमती थी और उसमें बैठे हुए आदमी ने बहुमूल्य वस्त्र पहिने थे। मसूद ने उससे पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

"शिवाजी।"

शिकार हाथ लग गया है यह जानकर मसूद फूला न समाया। वह लौट गया बीजापुर की छावनी में। पर उसकी खुशी निराशा में बदल गई जब उसे पता चला कि गिरफ्तार व्यक्ति छत्रपति शिवाजी नहीं शिवाजी नाम का नाई है। मराठों ने उसे चकमा देने के लिए ही यह चाल चली थी।

इस अफरातफरी में छत्रपति शिवाजी काफी आगे निकल गए थे। पर विशालगढ़ अब भी दूर था ? सिद्दी मसूद फिर निकल पड़ा उनके पीछे दो हजार घुड़सवार लेकर। छत्रपति शिवाजी और उनके सैनिक पूरी शक्ति से विशालगढ़ की ओर बढ़ रहे थे। पर उनका पीछा करने वाली सेना उससे अधिक तेजी से आगे बढ़ रही थी।

प्रातःकाल के कुछ देर बाद शिवाजी विशालगढ़ से सोलह किलोमीटर दूर गजापुर पहुँचे। आगे विशालगढ़ पर मोर्चा लगा कर बैठी शत्रु की सेना थी तो पीछे थे मसूद और उनके घुड़सवार जो प्रतिक्षण पास आते जा रहे थे। इन दोनों संकटों से कैसे निपटा जाए ?

गजापुर के पास विशालगढ़ को जाने वाला रास्ता एक संकरे दर्रे के बीच से निकलता है। यहाँ पर थोड़े से आदमी भी बड़ी सेना को रोक सकते हैं। शिवाजी के साथ जो टुकड़ी थी उसके प्रधान थे बाजी प्रभू देशपाण्डे। परिस्थिति की विकटता वे भाँप गए। वे समझ गए कि अगर बीजापुर की सेना शिवाजी को पकड़ ले तो स्वराज्य ही नष्ट हो जाएगा।

उन्होंने शिवाजी से कहा—"महाराज ! यह दर्रा बचाव की लड़ाई के लिए बहुत अच्छा है। मैं आधे सैनिकों के साथ यहाँ रुक जाता हूँ। आप बाकी सैनिकों को लेकर आगे बढ़िए। विशालगढ़ पहुँचकर आप पाँच बार तोपें दाग कर मुझे संकेत दीजिए कि आप सकुशल पहुँच गए।"

इस आग्रह और उचित सलाह को छत्रपति शिवाजी न टाल सके। चल पड़े विशालगढ़ की ओर बीजापुर की सेना से जूझने के लिए। पीछा करने वाली सेना की अब उन्हें चिन्ता न थी। क्योंकि यह जिम्मेदारी तो बाजीप्रभू ने ले ली थी।

उधर बाजीप्रभू के सैनिक डट गए थे—गजापुर के दर्रे में मसूद का रास्ता रोक कर। तीन सौ सिपाही दो तीन हज़ार की सेना के मार्ग में अड़ गए इस दृढ़ निश्चय के साथ कि जान देंगे पर शत्रु को दर्रे में से होकर जाने न देंगे। दोपहर से कुछ पहले मसूद ने हमला आरम्भ कर दिया। असफल। फिर असफल। बार-बार असफल। समय बीतता जा रहा था और मरांठे अपने खून से, अपने प्राण से अपने



राज्य और राजा के लिए एक एक-क्षण खरीद रहे थे। उनके शरीर दर में थे, मन छत्रपति शिवाजी के साथ और कान तोपों की आवाज सुनने के लिए आतुर। वे कट रहे थे पर चट्टान की तरह रास्ता रोक कर डटे हुए थे।

लगभग पाँच घण्टे तक लड़ाई होती रही। उधर छत्रपति शिवाजी विशालगढ़ के बाहर बीजापुर की फौज से लड़ते हुए किले की ओर बढ़ रहे थे। शाम के लगभग 6 बजे वे किले पर पहुँच गए। पन्हाला छोड़ने के इक्कीस घण्टे बाद वे चैन की साँस ले पाए। किले पर पहुँचते ही उन्होंने तोपें दागने का आदेश दिया, जिससे बाजीप्रभु देशपाण्डे समझ जाएँ कि महाराज सकुशल पहुँच गए, और वे भी निकल आएँ।

'धडडड·····धडाम।' एक के बाद एक तोप ने बाजी को संदेश देना आरम्भ किया। तब तक बाजीप्रभु देशपाण्डे के तीन सौ सैनिकों में से थोड़े ही बाकी बचे थे। बाजीप्रभु स्वतः भयंकर रूप से जख्मी हो गए थे। पर फिर भी वे और उनके सैनिक कई हजार फौज का रास्ता रोके हुए थे।

बाजीप्रभु ने तोपों की आवाज सुनी पर अब देर बहुत हो गई थी। उनकी देह पर बीसों जख्म हो चुके थे। तोपों का संदेश मिलने पर उन्होंने कहा, "मेरा कर्त्तव्य पूरा हो गया। महाराज सकुशल पहुँच गए।' थोड़ी ही देर बाद उन्होंने दम तोड़ दिया। उनके बलिदान से गजापुर का दर्रा पावन हुआ और उसका नाम पावनसिंह पड़ा।

छत्रपति शिवाजी का पन्हाला से निकलकर विशालगढ़ पहुँचना बीजापुर की फौज के लिए गहरा धक्का था। उसकी चार महीने की मेहनत थोड़ी-सी लापरवाही से बेकार हुई। बीजापुर के सुलतान और सिद्दी जौहर के बीच इस बात पर मनमुटाव हो गया। सुलतान ने शिवाजी के बच निकलने के लिए सिद्दी जौहर को दोषी ठहराया। उसका कहना था कि वह शिवाजी से मिल गया था। बीजापुर की सेना चार महीने पन्हाला पर घेरा डालने के बाद अब विशालगढ़ पर घेरा डालने के लिए तैयार न थी। यह किला तो और भी बड़ा था और इसमें से तो कोंकण में भी निकला जा सकता था। घेरा डालने के बाद कुछ हाथ लगेगा भी इसका कोई भरोसा न था। सुलतान और सिद्दी जौहर के मन-मुटाव के कारण सेना के हौसले भी पस्त हो गए। एक बड़ी लड़ाई से ही जो बात बन सकती थी वह युक्ति से बन गई थी।

विशालगढ़ पर कुछ दिन रह कर शिवाजी राजगढ़ चले गए। माँ से मिले, अपने मातृहीन युवराज सम्भाजी को देखा। अपने बच निकलने की और बीजापुर का आक्रमण समाप्त होने की खुशी के लिए भी समय न था क्योंकि पूना के आस-पास शाइस्ता खाँ और महाराज जसवन्तसिंह अभी भी तैयार बैठे थे एक लाख सेना के साथ उन्हें नष्ट करने के लिए। उनसे निपटने के लिए यह आवश्यक था कि बीजापुर से लड़ाई कुछ दिन बन्द रहे। दूसरी ओर बीजापुर दरबार के भी लड़ाई के हौसले पस्त हो गए थे। निदान शिवाजी ने पन्हाला बीजापुर को सौंप दिया और सुलतान से सन्धि कर ली। एक मामला तो निपट गया पर मुगल फौज का आक्रमण कैसे रोका जाए, यह बहुत बड़ा सवाल अभी बाकी था।

लाल महल पर छापा-सूरत की लूट

सिद्दी जौहर के घेरे से छत्रपति शिवाजी बच निकले, बीजापुर से सन्धि हो गई और उस ओर से अब कोई डर न रह गया था। पर पूना के आसपास के इलाके पर मुगलों ने उस बीच कब्जा जमा लिया था। दक्षिण में मुगल सूबेदार थे बादशाह औरंगजेब के मामा शाइस्ताखाँ। उन्हें औरंगजेब ने शिवाजी को कुचलने का आदेश दिया था। उनकी सहायता करने के लिए भेजे गए थे जोधपुर नरेश राजा जसवन्तसिंह। लगभग एक लाख मुगल सेना के साथ वे दोनों आए थे। शाइस्ताखाँ ने डेरा डाला था लाल महल में जहाँ शिवाजी का बचपन बीता था। शिवाजी और बीजापुर की लड़ाई मुगल उत्सुकता से देख रहे थे। वे चाहते थे कि दोनों कमजोर हों तो उनके ऊपर टूट पड़ा जाये। इस बीच वे हाथ पाँव भी पसार रहे थे। चाकण का किला वे जीत चुके थे, आस-पास का प्रदेश उनके हाथ में था। शिवाजी पन्हाला से बच निकले इस कारण शाइस्ताखाँ ने निश्चय किया कि उनके विरुद्ध शीघ्र ही कुछ करना होगा।

शिवाजी उत्तर कोंकण जीत चुके थे। वहाँ से उन्हें धन और रसद मिलती थी। शाइस्ताखाँ ने निश्चय किया यह प्रदेश लेने का। यह काम उसने सौंपा करतलब खाँ को। आश्चर्य होगा यह सुनकर कि इस काम में करतलब खाँ की सहायक थीं एक महाराष्ट्र ब्राह्मण स्त्री। इनका नाम था सावित्री-बाई। बरार में माहूर के देशमुख की ये विधवा थीं। पति की मृत्यु के बाद इन्होंने अपनी जागीर का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया था। कई लड़ाइयों में इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी। मुगलों की ये कट्टर समर्थक थीं और इस कारण औरंगज़ेब ने इन्हें उपाधि दी थी 'राय बाघिन'।

मुगल सेना कोंकण विजय के लिए रवाना हो रही है यह पता शिवाजी को लग गया। अब तक कई बार छिटफुट हमलों में मराठे मुगलों को मज़ा चखा चुके थे। पर यह मौका तो बहुत बड़ा था। मुगलों का रास्ता उम्बर खिण्ड के बीच गुजरता था। यह दर्रा आजकल के लोनावला रेलवे स्टेशन के पास है। इस दर्रे के बीच कन्धे से कन्धा मिला कर दो या तीन आदमी ही जा सकते थे। दर्रा लगभग चौदह किलोमीटर लम्बा है, दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हैं और पानी का कहीं नामोनिशान नहीं।

जनवरी सन् 1661 में मुगलों की सेना तोपें, घोड़े और लड़ाई का अन्य सामान लेकर इस दर्रे में घुसीं। उन्हें क्या पता कि उनके भाग्य में कोंकण विजय नहीं उम्बर खिण्ड पराजय ही लिखी थी? मराठों ने दर्रे के दोनों सिरों पर और बीच में भी अपनी टुकड़ियाँ तैनात कर रखी थीं। मुगल सेना की प्रगति को वे चुपचाप देख रही थीं। विसापुर और लोहगढ़ के किलों में मराठा सेना थी। पर उसने भी मुगल सेना बिलकुल पास से जाते देखकर भी कोई छेड़छाड़ न की। वे ऐसे बैठे रहे मानों उनको कोई मतलब ही नहीं।

धीरे-धीरे सारी मुगल सेना उम्वर खिण्ड में दाखिल हो गई। पहाड़ी संकरे रास्ते पर वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी। और एकाएक उस पर चारों ओर से पत्थर वाण और गोलियों की वर्षा आरम्भ हो गई। हर हर महादेव के नारे के साथ मराठे मुगलों पर टूट पड़े। मुगल सेना हतवुद्ध हो गई। मैदानों की लड़ाई में काम आने वाले उसके शस्त्रास्त्रों के प्रयोग के लिए न जगह थी और न समय। मुगल सैनिक जंगल की लड़ाई में अनभ्यस्त थे। मराठे उन्हें तलवार के घाट उतारते जा रहे थे। मुगलों की विशाल सेना मराठों के हाथों पिट रही थी। रास्ता संकरा था और इस कारण किसी भी जगग वह मराठों के विरुद्ध शक्ति एकत्र न कर सकती थी। पीने का पानी कहीं न था और सेना मराठों के आक्रमण से जितनी त्रस्त थी उससे कहीं अधिक प्यास के कारण। मुगल सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। पर भागने का भी रास्ता न था। छत्रपति शिवाजी स्वतः मराठा सेना का नेतृत्व कर रहे थे और उन्होंने सारे रास्तों की पूरी नाकाबन्दी कर दी थी।

जान बचाने का एक ही रास्ता था और वह था शिवाजी से दया की याचना। रायवाघिन ने करतलब खाँ को यही राय दी। लाचार होकर करतलब खां ने शिवाजी के पास दूत भेजा और दया की भीख माँगी। वादा किया कि वे शिवाजी के प्रदेश को फिर कभी जीतने का प्रयास न करेंगे। शिवाजी ने करतलब खाँ से दण्ड में भारी रकम वसूल की और उनकी सेना का सामान जब्त कर लिया। तभी मुगल सेना उम्वर खिण्ड से वापस जा सकी। छोटी-सी मराठा सेना ने वहुत वड़ी मुगल सेना को बुरी तरह डराया था पर फिर भी शाइस्ता खां को पूना से कैसे भगाया जाये यह समस्या वाकी थी।

पर उस समय शिवाजी के सामने एक दूसरा काम था और वह था उन लोगों को दण्ड देना जिन्होंने बीजापुर के आक्रमण के समय उनके शत्रुओं की सहायता की थी। इनमें प्रधान थे अंग्रेज। शिवाजी ने अब तक अंग्रेजों के विरुद्ध हाथ न उठाया था। एकवार जव उनके अधिकारियों ने एक अंग्रेज व्यापारी को वन्दी वनाया था तव शिवाजी ने स्वतः उसे मुक्त करने का आदेश दिया था। इसके विपरीत अंग्रेजों ने पन्हाला के घेरे में सिद्दी जौहर की सहायता की था। अंग्रेज तोपचियों की टुकड़ी ने अपना झण्डा गाड़कर पन्हाला पर गोला वारी की थी, मानों शिवाजी को प्रकट रूप से यह वताने के लिए कि हम बीजापुर के मित्र हैं और तुम्हारे शत्रु। इसके पहले भी अंग्रेज कई वार शिवाजी के विरुद्ध जा चुके थे।

करतलव खाँ को हराने के वाद शिवाजी ने नेताजी पालकर पर मुगलों पर नजर रखने का काम छोड़ा और वे निकल पड़े दक्षिण कोंकण के समुद्रतट की ओर। दाभोल, चिपलून, संगमेश्वर आदि जीतकर मराठा सेना दौड़ पड़ी राजापुर की ओर। राजापुर उस समय का वड़ा वन्दरगाह था और यहां से विदेशों के साथ व्यापार होता था। शिवाजी ने शहर लूटा नहीं। उन्होंने सारे व्यापारियों को नगर के वाहर बुलाया और उनसे धन माँगा। पर जव उनकी निगाह अंग्रेज व्यापारियों पर पड़ी तो उनकी त्यौरियाँ चढ़ गई—याद आ गए वे गोले जो उन्होंने पन्हाला पर वरसाए थे। वाकी व्यापारियों को तो उन्होंने धन लेकर छोड़ दिया पर अंग्रेजों का सारा माल जब्त कर लिया, आढ़त गिरा दी और सारे अंग्रेजों को वन्दी वनाया। लेकिन वन्दीगृह में उन्हें सभी सुविधाएँ दीं गई। वन्दियों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अध्यक्ष से आग्रह किया कि वे उनकी रिहाई के लिए शिवाजी पर जोर डालें। पर उसने कहा, 'तुम लोग कम्पनी की सेवा करने के कारण तो वन्दी हुए नहीं। तुमने शिवाजी के विरुद्ध लड़ाई में भाग लिया। यह काम तो व्यापारियों का नहीं और इसकी तुम्हें सजा मिल रही है। कोई भी दूसरा राजा ऐसा ही करता। जैसी करनी वैसी भरनी।' शिवाजी ने लगभग दो वर्ष कारागार में रखने के वाद अंग्रेज व्यापारियों को चेतावनी दे कर छोड़ दिया।

इसी मुहीम में शिवाजी ने शृंगारपुर के सूर्यराव सुर्वे और पाली जसवन्त राव दलवी को भी वीजापुर का साथ देने के लिए सबक सिखाया। संगमेश्वर और दापोली के बीच का प्रदेश सूर्यराव को जागीर में मिला था। शिवाजी ने इनसे मित्रता करने की पूरी कोशिश की। पर जब वे न माने तो उन्होंने शृंगारपुर पर हमला कर दिया। सूर्यराव भाग गए और शिवाजी ने उनको जागीर जब्त कर ली। इन्हीं के रिश्तेदार थे वाघोजी शिर्के। शिवाजी से इनकी मित्रता हो गई और उन्होंने अपनी कन्या का शिवाजी से विवाह कर दिया।

करतलव खाँ के पराभव के कारण शाइस्ता खाँ को क्रोध आना स्वाभाविक था। उसकी सेना ने कल्याण पर हमला कर वह प्रदेश जीत लिया। जब शिवाजी को पता चला तब उन्होंने एकाएक इस सेना पर छापा मारा और उसे पराजित किया। मराठे इससे पहिले भी कई बार मुगल सेना का पराभव कर चुके थे पर मुगल पूना के आसपास के प्रदेश में जमकर बैठे थे और हटने का नाम न लेते थे। शिवाजी की छोटी-सी सेना के लिए मुगलों से सीधी टक्कर लेना सम्भव न था। पर मुगलों का इरादा स्पष्ट हो गया था और उन्हें अधिक देर तक पूना में टिकने देना खतरे से खाली न था। मुगल सेना धीरे-धीरे शिवाजी की नाकाबन्दी करती जा रही थी।

इस समस्या को सुलझाने का जो तरीका शिवाजी ने अपनाया वह वास्तव में अद्भुत था। उनके जैसा प्रतिभाशाली व्यक्ति ही ऐसी योजना बना सकता था और उनके जैसा साहसी और वीरवर ही उसे कार्यान्वित कर सकता था। मुगलों की लगभग एक लाख सेना ने पूना के आसपास पड़ाव डाला था। इसके मध्य में था लाल महल, शिवाजी का मकान जिसमें शाइस्ता खाँ रहते थे। इतनी बड़ी सेना की छावनी के बीच रहने वाले प्रधान सेनापति पर छापा मारना असम्भव था। काम बड़े साहस का था। पकड़ जाने पर मृत्यु निश्चित थी। शिवाजी ने इसे स्वतः करने का निश्चय किया।

शिवाजी ने लाल महल पर जो छापा मारा उसके संबंध में निश्चित विवरण नहीं मिल पाता। कुछ वर्णनों में अतिशयोक्ति है। इनके अनुसार छापे में लगभग एक हज़ार सैनिकों ने भाग लिया। इतनी बड़ी संख्या में मराठे मुगल चौकियों को पार कर अन्दर जाएँ यह असम्भव लगता है। इसी तरह यह भी कवि कल्पना है कि शिवाजी और उनके साथी बरातियों के वेश में छावनी में घुसे क्योंकि जिस महीने में यह घटना हुई उसमें महाराष्ट्र में विवाह नहीं होते।

पर इतना निश्चित है कि 5 अप्रैल, सन् 1663 को शिवाजी और उनके चार सौ साथियों ने बड़े साहस के साथ शाइस्ता खाँ की छावनी पर छापा मारा। रमजान का महीना था और मुगल सेना रोजे का उपवास रख रही थी। रात में शिवाजी और उनके साथी मुगल छावनी में घुसे। मुगल चौकियाँ पार करने के लिए उन्होंने तरह-तरह के बहाने बनाए होंगे, हो सकता है वेश भी बदला हो। रात्रि के अंधकार से फायदा उठाकर वे चुपचाप अपने गन्तव्य लाल महल की ओर बढ़ते गए। शिवाजी लाल महल का का चप्पा-चप्पा जानते थे, बचपन जो उनका वहीं बीता था। मध्य रात्रि के कुछ देर बाद उन्होंने लाल महल में प्रवेश किया। रोजे का नियम यह है कि सूर्योदय के पहिले या सूर्योदय के बाद ही खाना खाया जा सकता है। शाइस्ता खाँ के रसोइये खाना बना रहे थे सूर्योदय के पहिले परोसने के लिए। लाल महल के बाहर संतरी तैनात कर शिवाजी लगभग पचास अनुचरों के साथ रसोईघर में दाखिल हुए, दीवार में सेंध लगा कर। अन्दर पहुँच कर तो उन्होंने तहलका मचा दिया। क्या हो रहा है यह भी किसी को पता न चल पाया। शाइस्ता खाँ के सिपाहियों को मारते काटते वे पहुँच गए उस जगह जहाँ शाइस्ता खाँ सोये थे। वे भी अब तक कोलाहल सुन कर जग गए थे उन्होंने घबड़ाकर भागने की सोची। वे खिड़की से बाहर कूद गए पर शिवाजी भी उन्हीं की तलाश में थे। तलवार का हाथ



उनके पंजे पर पड़ा और उनकी तीन उंगलियाँ कट गईं। शाइस्ता खां के एक पुत्र, दामाद, एक अधिकारी तथा लगभग पचास अन्य सिपाही मारे गए। इसके अतिरिक्त दो पुत्र जख्मी हुए। उनके जनानखाने की कई स्त्रियाँ और नौकर भी मारे गए या जख्मी हुए। छः मराठे मारे गए और चालीस जख्मी हुए।

अब तक सारी छावनी में भगदड़ मच गई थी। लोग दौड़े चले आ रहे थे लाल महल की ओर। पर क्या हो रहा है यह किसी को भी पता न था। लाल महल के दरवाजे बन्द थे। अन्दर से चीख पुकार की आवाज आ रही थी। उस गड़बड़ी का लाभ उठाकर शिवाजी और उनके साथी बच निकले। वहाँ से सिंहगढ़ केवल बीस किलोमीटर दूर ही तो था। वे वहाँ सुरक्षित पहुँच गए।

दूसरे दिन प्रातःकाल मुगल छावनी में मातम छाया था। इतनी विशाल सेना के बीच रहने वाले सेनापति पर, मुगलों के सूबेदार पर, बादशाह के मामा पर शिवाजी ने छापा मारा और उसके बाद निकल भी गया? यह आदमी है या शैतान? जब मुगलों को पता चला शिवाजी ने सिंहगढ़ में शरण ली है तो उन्होंने सिंहगढ़ पर हमला करने का प्रयत्न किया, पर किले की तोपों की मार के आगे उनकी कुछ न चली।

इस छापे के बाद शाइस्ता खाँ ने पूना में रहना सुरक्षित न समझा और वे औरंगाबाद चले गए। उनके जाने के बाद राजा जसवन्तसिंह ने फिर एक बार सिंहगढ़ जीतने का प्रयत्न किया पर उन्हें हार माननी पड़ी।

लाल महल पर छापे के करण शिवाजी मुगलों के लिए आतंक बन गए। उनके बारे में तरह-तरह की किम्वदन्तियाँ प्रचलित हुईं जैसे वे दस मीटर दूर कूद जाते हैं। शाइस्ता खां और मुगल सेना की प्रतिष्ठा के लिए यह छापा बहुत बड़ा आघात था। औरंगाबाद जाकर भी शाइस्ता खाँ को शान्ति नहीं मिली। जब औरंगजेब को इस घटना की खबर मिली तो वे आग बबूला हो गए। उन्होंने शाइस्ता खाँ को दक्षिण से हटाकर बंगाल में सूबेदार नियुक्त किया। बंगाल की जलवायु मुगलों को अच्छी नहीं लगती थी और वहाँ भेजा जाना दण्ड समझा जाता था। दक्षिण में नये मुगल सूबेदार नियुक्त हुए शाहजादा मुअज्जम।

मुगल सेना के हटते ही शिवाजी फिर दक्षिण कोंकण पहुँचे। राजापुर का वन्दरगाह उनके पास था उन्होंने उसके दक्षिण में कुडाल के आसपास का इलाका जीत लिया।

अभी कुछ ही समय पहिले शिवाजी पन्हाला में बन्द थे। थोड़े समय में ही उन्होंने सारी परिस्थिति ही बदल दी थी। राजापुर और कुडाल जीतकर और शाइस्ता खाँ पर छापा मार कर भी अभी वे सन्तुष्ट न थे।

उनकी निगाह थी सूरत पर जो उस समय वहुत बड़ा वन्दरगाह था। देश-विदेश के व्यापारियों की यहाँ आढ़तें थीं। हज की यात्रा के लिए जाने वाले यात्री यहीं से जहाज पर सवार होते थे और इस कारण उसे दार-उल-हज कहा जाता था। मुगल साम्राज्य में दिल्ली के वाद जो शहर सम्पन्न समझे जाते थे उनमें सूरत प्रधान था। यहाँ से प्रतिवर्ष मुगलों को करोड़ों रुपये करके रूप में मिलते थे। सूरत में वड़ा धन था और शिवाजी को धन की वड़ी आवश्यकता थी।

मुगल भी सूरत का महत्व समझते थे। यहाँ पर मुगलों का सूबेदार और सेना बरावर रहती थी। पर इससे भी बड़ी कठिनाई यह थी कि सूरत छत्रपति शिवाजी के राज्य की सीमा से लगभग तीन सौ किलोमीटर दूर था। रास्ते में मुगलों के कई किले और सनिक अड्डे थे। यहाँ तक सेना लेकर जाना और यहाँ धन वसूल कर वापस आना कठिन काम था। पर लगभग तीन वर्ष के निरन्तर युद्ध के कारण शिवाजी का खजाना खाली हो गया था और उसे फिर से भरना आवश्यक था।

दिसम्बर सन् 1663 के अन्त में छत्रपति शिवाजी लगभग चार हजार मराठा सेना के साथ राजगढ़ से निकले। नासिक और त्र्यंबकेश्वर के तीर्थ-स्थानों में वे गए। पूछने पर सभी लोग यह कहते थे कि औरंगाबाद में शाहजादा मुअज्जम की छावनी पर हमला करने की योजना है। इस समाचार से औरंगाबाद में मुगल सतर्क हो गए। शिवाजी से लड़ाई की तय्यारी जोरों से आरम्भ हो गई।

त्र्यंबकेश्वर छोड़ने के वाद शिवाजी विद्युतगति से उत्तर की ओर मुड़ गए। औरंगाबाद में मुगलों ने उनके आक्रमण का मुकाबला करने की पूरी तय्यारी कर रखी थी और उधर वे बढ़े जा रहे थे रात को चलकर और दिन में आराम करते हुए सूरत की ओर। त्र्यंबकेश्वर छोड़ने के केवल पाँच दिन बाद मराठे पहुँच गए सूरत के दक्षिण में गणदेवी में।

मराठा सेना के आगमन से सूरत में घबराहट फैल गई। मुगल सूबेदार इनायतुल्ला खाँ पास उनका मुकाबला करने की न सामर्थ्य थी और न हिम्मत। लेकिन जब शिवाजी ने उसके पास अपना वकील भेज कर धन की माँग की तो उसने उद्दण्डता भरा उत्तर भेजा। सूबेदार बादशाह की ओर से फौज रखने के लिए धन तो लेता था लेकिन उसे खा जाता था। फौज उसने रखी ही न थी। शिवाजी ने जब उसके उद्दण्डतापूर्ण उत्तर को सुनकर गणदेवी से सूरत की ओर कूच किया तब वह गढ़ी में जा छिपा। गढ़ी में आश्रय देने के लिए उसके कुछ व्यापारियों से लम्बी-लम्बी रकमें भी वसूल कीं। उसके आश्रय में अपने को सुरक्षित समझने वाले व्यापारियों को उसने भगवान के हवाले छोड़ दिया।

शिवाजी ने इनायत खाँ को फिर एक बार चेतावनी दी कि वह नगर के तीन प्रमुख व्यापारियों के साथ उनसे मिलकर दण्ड की रकम निश्चित करे नहीं तो विवश होकर उन्हें अन्य उपायों से धन वसूल करना होगा। जब उन्हें कोई उत्तर न मिला तो उनकी सेना ने 6 जनवरी, 1664 को शहर में प्रवेश किया। उन्होंने व्यापारियों के मकान और आढ़तें तोड़ीं और लूट का माल इकट्ठा करना आरम्भ किया। इस लूट में भी सेना का काम बड़े अनुशासन से चल रहा था। सारा माल इकट्ठा कर शिवाजी



के पास ले जाया जाता था। किसी गरीब नागरिक को, स्त्री को, साधु या फकीर को या मन्दिर, मस्जिद और गिरजे को सेना हाथ न लगाती थी। सूरत में उन दिनों कैपुसिन ईसाइयों का एक मठ था। उसके महन्त ने शिवाजी से प्रार्थना की गरीब ईसाइयों को न सताया जाए। शिवाजी ने मठ की पूरी रक्षा की और सूरत की चार दिन की लूट में मठ को कोई भी नुकसान न हुआ। इसी तरह एक डच व्यापारी भी अपनी उदारता के लिए प्रसिद्ध था। उसके मकान को भी शिवाजी ने हाथ न लगाया।

मराठों ने सूरत की अंग्रेज आढ़त को भी कोई नुकसान नहीं पहुँचाया। अंग्रेजों ने आढ़त की रक्षा का पूरा प्रवन्ध किया था और उनसे धन वसूल करने के लिए खून खराबा आवश्यक था। इतना समय उसके पास था नहीं। वे तो जल्दी से जल्दी अधिक से अधिक धन चाहते थे। जब वह उन्हें आसानी से मिल रहा था तो नया झगड़ा मोल लेने से क्या लाभ ?

6 और 7 जनवरी को मराठों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि अकारण ही रक्तपात न हो। पर एक घटना के कारण उन्होंने अपना रवैय्या बदला। सूबेदार की ओर से शिवाजी के पास एक दूत आया। जब शिवाजी उससे बात कर रहे थे तब उसने एकाएक आगे बढ़कर शिवाजी के ऊपर कटार से हमला कर दिया। पर वह शिवाजी तक पहुंचे इसके पहिले ही उनके एक अंगरक्षक ने तलवार के एक वार से उसके हाथ के दो टुकड़े कर दिए। शिवाजी को कोई चोट नहीं आई लेकिन उनके कपड़े दूत के रक्त से रंग गए।

इस घटना से मराठों को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने बन्दियों का कत्ले आम शुरू कर दिया। शिवाजी को स्वतः इसे रोकने की आज्ञा देनी पड़ी। बन्दियों की जानें तो बच गई पर जब सिपाहियों को यह खबर मिली तो उन्होंने धनी व्यापारियों के घरों को लूटने के बाद आग लगाना आरम्भ किया। लूट और आग दूसरे दिन भी जारी रही। चार दिन सूरत की लूट मचा कर जब मराठे वापस गए तब सूरत में लगभग तीन हजार मकान आग से नष्ट हो चुके थे, शहर की सारी सम्पति का हरण हो गया था और सूरत की सूरत पूरी तरह बिगड़ चुकी थी।

शिवाजी के सूरत छोड़ने के एक सप्ताह बाद मुगलों की सेना वहाँ पहुँची और तभी मुगल सूबेदार इनायतुल्ला खाँ गढ़ी से बाहर निकले। तब तक मराठे सूरत से बहुत दूर निकल गए थे। वे जिस विद्युत् गति से आए थे उतनी शीघ्रता से वापस जाना सम्भव न था, बेहद लूट जो पास थी।

सूरत से लौटने के थोड़े ही दिन बाद शिवाजी को शहाजी की मृत्यु का समाचार मिला। वे कर्नाटक में बसवापट्टन के पास शिकार के लिए गए थे और घोड़े से गिरने के कारण उनकी मृत्यु हुई। पिता और पुत्र की भेंट कम ही होती थी पर दोनों में प्रेम अवश्य था। पन्हाला की लड़ाई के बाद तो बीजापुर के सुलतान ने शिवाजी से सन्धि करने के लिये शहाजी की सहायता भी ली थी। पुत्र के पास पिता सन्धि का दूत बन कर जाए यह इतिहास में संभवतः एक ही उदाहरण है। बेटे के पराक्रम से उन्हें अवश्य प्रसन्नता होती होगी यद्यपि परिस्थिति के कारण वे उसे भले ही प्रकट न कर पाते हों। पिता की मृत्यु शिवाजी के लिए दुखदायी थी तो जिजाबाई के लिए वह बहुत बड़ा आघात था। उन्होंने सती हो जाने का निश्चय किया। बड़ी मुश्किल से ही शिवाजी उन्हें सती होने से रोक सके।

पुरन्दर पर हमला—मुरारबाजी का बलिदान

स्वराज्य स्थापना के प्रयास को आरम्भ किए अब बीस वर्ष हो चुके थे। इन बीस वर्षों में शिवाजी के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आए। कई बार तो ऐसे मालूम पड़ा कि उनका राज्य और वे स्वतः नष्ट ही हो जाएँगे। उनके जीवन का आरम्भ एक छोटे जागीरदार के रूप में हुआ था। अब यह सभी मानने लग गए थे कि वे एक स्वतंत्र राजा हैं किसी के माण्डलिक नहीं। पूना सूपा से लेकर जावली का प्रदेश और उससे लगा हुआ कोंकण तट अब उनके अधीन था। उत्तर कोंकण कई बार उन्होंने जीता और कई बार उनके हाथ से निकल गया। उनके छोटे से राज्य में रायगढ़, प्रतापगढ़, राजगढ़, पुरन्दर जैसे दुर्गम किले थे। राज्य की प्रधान शक्ति थी उनकी छोटी पर सुसंगठित सेना जिसने कई बार मुगलों और बीजापुर की सेनाओं के छक्के छुड़ा दिए थे। शिवाजी की वीरता, बुद्धि कौशल, सूझबूझ, न्यायप्रियता की ख्याति सारे देश में फैल गई थी।

बीजापुर का सुलतान शिवाजी को नष्ट तो करना चाहता था पर अब तक यह समझ चुका था कि यह असंभव है। अफजल खाँ, जसवन्त सिंह, करतलब खाँ आदि सेनानी इस प्रयास में असफल हो चुके थे। इस कारण इधर कई वर्षों से बीजापुर और शिवाजी के बीच सन्धि चली आ रही थी।

इस समय उत्तर में बादशाह औरंगजेब की सत्ता चरमसीमा पर पहुँच गई थी। अब तक उन्होंने अपनी उस धर्मान्धिता को छिपाए रखा था जिसके कारण बाद में राजपूत भी उनके शत्रु बन गए थे। सारा उत्तरी भारत औरंगजेब के कब्जे में था। बल्ख से लेकर बंगाल तक उनका आधिपत्य था। अब वे चाहते थे दक्षिण में साम्राज्य का विस्तार। जब वे दक्षिण में सूबेदार थे तभी यह समझ गए थे कि शिवाजी उनके इस प्रयास में प्रधान बाधा है, बीजापुर और गोलकोण्डा नहीं। अहमदनगर और जुन्नर की लूट के लिए उन्होंने शिवाजी को क्षमा किया था क्योंकि वे तब मुगल सिंहासन के लिए भाइयों से लड़ रहे थे और कुछ कर न सकते थे। पर वे इसे भूले न थे।

शाइस्ता खाँ की छावनी पर छापा मार कर शिवाजी ने सारे मुगल साम्राज्य और सेना का उपहास किया था। औरंगजेब को जब इसका समाचार मिला तो वे आग बबूला हो गए। अभी उनका क्रोध शान्त भी न हुआ था कि उन्हें सूरत के लूट की खबर मिली। शिवाजी के विरुद्ध उन्होंने पूरी तरह सुसंगठित सेना भेजने का निश्चय किया। प्रधान सेनापति नियुक्त किए गए जयपुर नरेश राजा जयसिंह। मुगलों की सेना में उन्होंने लगभग पचास वर्ष व्यतीत किए थे। लड़ाई और राजनीति दोनों में वे निपुण थे। शाहजहाँ के राज्यकाल में उनको वही सम्मान प्राप्त था जो बादशाह के अपने पुत्रों को था। वीरता, दूरदर्शिता, कूटनीति, अनुभव इन सबके कारण वे मुगल साम्राज्य के प्रधान आधारस्तम्भ समझे जाते थे। शिवाजी का काँटा निकालने के लिए बादशाह ने इनको नियुक्त किया। इनके सहायक नियुक्त किए गए दिलेरखाँ जो अपनी वीरता और रणकुशलता के लिए प्रसिद्ध थे। चुने हुए मुसलमान

और राजपूत सरदारों को अपनी-अपनी टुकड़ियों के साथ जाने की आज्ञा दी गई। सन् 1664 के अन्त में यह सेना दक्षिण की ओर चल पड़ी।

इस अभियान का उद्देश्य शिवाजी को ही नहीं बीजापुर और गोलकोण्डा के मुसलमान राज्यों को भी नष्ट करना था। पर मुगल इन तीनों से एक के बाद एक निपटना चाहते थे। बीजापुर और गोलकोण्डा से भी इस कारण शिवाजी के विरुद्ध सहायता माँगी गई थी। संभवतः इसी कारण मुगल सेना दक्षिण के लिए रवाना होने के समय बीजापुर के सुलतान ने भी दक्षिण कोंकण में कुडाल जीतने के लिए खवास खाँ को भेजा। कुडाल के जागीरदार खेम सावन्त भी भौंसले वंश के ही थे। शिवाजी के डर से उन्होंने दिखाने के लिए शिवाजी की अधीनता स्वीकार की थी पर अन्दर से वे बीजापुर से मिले हुए थे।

खवास खाँ की सहायता करने के लिए सुलतान ने मुधोल के जागीरदार बाजी घोरपड़े को भी लिखा था। बाजी, भोंसले परिवार के कट्टर वैरी थे। शहाजी की गिरफतारी में इनका हाथ था। शिवाजी के विरुद्ध भी ये बीजापुर की तरफ से कई मुहीमों में लड़ चुके थे, वैर पुराना था। खवास खाँ से लड़ने लिए जब शिवाजी निकले तो उन्होंने अचानक मुधोल पर हमला कर दिया। बाजी ने पूरी ताकत से प्रतिरोध किया, पर वे लड़ाई में मारे गए। शिवाजी ने उनके परिवार के सभी पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया। बाजी की रानी दो बेटों के साथ मैके गई हुई थी। ये ही दो बेटे शिवाजी की क्रोधाग्नि से बच पाए।

शिवाजी और खवास खाँ की लड़ाई के परिणाम के बारे में काफी मतभेद है। मराठा इतिहासकारों के अनुसार खवास खाँ शिवाजी के हाथों बुरी-तरह पराजित हुए थे। लेकिन मुस्लिम इतिहासकार खाँ की विजय के गीत गाते हैं। इतना निश्चित है कि बीजापुर की सेना कुडाल जीतने में असमर्थ रही। इस कारण खवास खां की विजय हुई होगी यह संभव नहीं लगता। इसके बाद शिवाजी ने खेम सावन्त को बीजापुर का साथ देने के लिए सजा दी। उनके किले जीत लिए और प्रदेश लूट लिया। खेम सावन्त पुर्तगालियों की शरण में गए। पर वहाँ भी बच न सके। शिवाजी की सेना ने पुर्तगालियों के फोण्डा किले को घमासान लड़ाई के बाद जीत लिया। खेम सावन्त की आधी जागीर उन्होंने जप्त करली और चेतावनी देकर आधी लौटा दी। इस लड़ाई में शिवाजी के सौतेले भाई एकोजी उर्फ व्यंकोजी ने भी बीजापुर का साथ दिया था। पर उन्हें सबक सिखाने का मौका अभी न आया था।

दक्षिण कोंकण पर आया हुआ खतरा दूर करने के बाद शिवाजी ने वेंगुर्ला, हबुली काखारे आदि बीजापुर राज्य के नगर लूट लिए। वे समुद्र तट और नौसेना का महत्व अच्छी तरह जानते थे। इस समय उन्होंने मालवण के पास समुद्र तट पर नया किला बनवाया और उसे नाम दिया— सिंधुदुर्ग। जब तक उनकी नौसेना भी तय्यार हो चुकी थी। अपनी नौसेना के जहाजों को लेकर वे बसरूर गए और उन्होंने उसे लूटा। यह पहिला और अन्तिम अवसर था जब उन्होंने स्वतः नाविक लड़ाई में हिस्सा लिया।

इन नगरों की लूट से यह अर्थ न लगाना चाहिए कि शिवाजी के सैनिक वहाँ जाकर मनमानी लूट मचाते थे। वे केवल धनी व्यापारियों से दण्ड के रूप में धन वसूलते थे। साधारण जनता को, विशेषकर स्त्रियों, साधू और फकीरों को कष्ट न पहुँचे इसका पूरा ध्यान रखा जाता था।

इस अभियान से छत्रपति शिवाजी राजगढ़ लौटे तब तक राजा जयसिंह पूना पहुँच चुके थे। शिवाजी के विरुद्ध लड़ाई में भाग लेने के लिए उन्होंने शिवाजी के सभी शत्रुओं को एकत्र करने का प्रयास किया उन्होंने अपनी युद्ध योजना बड़ी कुशलता से बनाई थी और उतनी ही दक्षता से वे उसे कार्यान्वित

भी कर रहे थे। पर इसमें एक अड़चन थी। उनका विचार था कि पहिले शिवाजी के मैदानी इलाकों पर कब्जा कर लिया जाए और किलों पर बाद में। इसके विपरीत उनके नायब दिलेरखाँ का आग्रह था कि शिवाजी की सारी शक्ति उनके किलों में है और किले पहले लेने चाहिएँ। उसके बाद मैदानी प्रदेश लेने में कोई कठिनाई न होगी। इस मतभेद से रास्ता यह निकाला गया कि बड़े किलों पर हमले करने के साथ-साथ शिवाजी के प्रदेश पर भी बराबर हमले जारी रखे जाएँ और उसकी इतनी अच्छी तरह नाकाबन्दी की जाए कि शिवाजी को कहीं से भी रसद और अन्य आवश्यक सामान मिल न सके। बीजापुर, गोलकोण्डा अंग्रेज, पुर्तगाली आदि सभी को शिवाजी की सहायता न करने के लिए पत्र भेजे गए।

मुगलों ने पहिले हमले के लिए जो किला निश्चित किया वह था पुरन्दर। यह पूना से लगभग चालीस किलोमीटर दूर है। 31 मार्च, 1665 को मुगल सेना पुरन्दर के पास पहुँच गई और उसने किले का घेरा डालना आरम्भ किया। इस किले के दो भाग हैं। निचला भाग आसपास की जमीन से लगभग छः सौ मीटर ऊँचा है। इसके अन्दर एक दूसरा हिस्सा है जो माची से भी सौ मीटर ऊँचा है? इसे बाले किल्ला कहते हैं। पुरन्दर से सटकर एक दूसरा किला है, रुद्रमाल या वज्रगढ़। यह पुरन्दर से कुछ छोटा है। मानो दो भाई हों। राजा जयसिंह और दिलेरखाँ के अधीन लगभग चालीस हजार मुगल सेना ने दोनों दुर्गों को पूरी तरह से घेर लिया। किलों में थी लगभग चार हजार मराठा सेना। मुगल चाहते थे कि पुरन्दर जीत कर अपने अभियान का बिस्मिल्ला करना, तो मराठे उतने ही निश्चिय से किले को बचाने के लिए प्राणों की बाजीं लगा रहे थे। पुरन्दर के किलेदार थे मुरार बाजी जो अपनी वीरता और स्वामिनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध थे। अब तक मराठे जिस युद्ध नीति से लड़ते आए थे वह इस समय उनके काम न आ रही थी क्योंकि मुगल सेना पूरी तरह सुसज्जित थी और छुटपुट हमलों से या थोड़े बहुत नुकसान से न डरती थी। मराठे मुगलों के हमलों का बराबर जवाब देते जा रहे थे पर संख्या बल के सामने वे लाचार थे। मुगलों के हमले का वे प्रतिकार कर रहे थे और उन्हें आशा थी कि अगर ये लम्बी अवधि तक टिक सके तो मुगल सेना निराश होकर घेरा उठा लेगी। बाहर से सहायता आने का सवाल न था क्योंकि मुगलों ने सारे प्रदेश की नाकेबन्दी कर रखी थी और उनकी सेना रसद आने के सभी मार्गों को छेक कर बैठी थी। फिर भी एक दिन रात के अन्धेरे में मराठों ने पुरन्दर के रक्षकों के लिए रसद गोला बारूद पहुँचा ही दी।

पर मुगलों को लम्बे घरे में फँसाने की और थकाने की मराठा नीति इस बार सफल न हुई। राजा जयसिंह और दिलेरखाँ ने तोपों की मदद लेने का निश्चय किया। वज्रगढ़ के पास की एक पहाड़ी पर उन्होंने तोपें चढ़ाईं और वहाँ से वज्रगढ़ पर धुंआधार गोले बरसाने आरम्भ किए। जब ये तोपें चढ़ाई जा रही थीं तब मराठों ने अपनी तोपों और बन्दूकों की मार से मुगलों को रोकने का प्रयत्न किया। पर मुगल इसमें सफल हो गए और वज्रगढ़ मुगल तोपों की मार में आ गया।

लड़ाई की दृष्टि से वज्रगढ़ का बड़ा महत्व था। पुरन्दर और वज्रगढ़ दोनों मिलकर अभेद्य थे। पर वज्रगढ़ अगर हाथ से निकल जाए तो पुरन्दर को बचाना असंभव था क्योंकि वहाँ से निचले हिस्से पर ही नहीं ऊपर के वाला किले पर भी तोपों से अग्नि वर्षा की जा सकती थी। वज्रगढ़ पर थे चार सौ मराठे। वे तोपों और पैदल सेना का मुकाबला कर रहे थे यह समझ कर कि मरना यहीं है। उधर पुरन्दर पर भी मुगल सेना निचले हिस्से तक पहुँच चुकी थी। मुरारबाजी देख रहे थे वज्रगढ़ की ओर हताश होकर जैसे किसी प्रिय व्यक्ति का निधन देख रहे हों। दस बारह दिन वज्रगढ़ टिका रहा किले में थोड़े से ही मराठे अब बच रहे थे। उन्होंने 14 अप्रैल, 1665 को हथियार रख दिए।

वज्रगढ़ हाथ में आते ही मुगलों ने वहाँ पर तोपें पहुँचाईं । अब बारी पुरन्दर की थी । मुगल फौज ने चारों ओर से किला पहिले ही घेर लिया था अब वज्रगढ़ से अग्निवर्षा भी आरम्भ हो गई । मराठे भी चुप न थे । एक रात उन्होंने अचानक छापा मार कर एक तोप बेकार कर दी । पर मुगलों के कदम आगे ही बढ़ते जा रहे थे । प्रश्न था पुरन्दर कितने दिन टिक सकेगा ? और इसी बीच एक दुर्घटना हुई । किले की दीवार में एक जगह मराठों ने गोला बारूद रखी थी उसमें अचानक विस्फोट हुआ और पुरन्दर की दीवार का एक हिस्सा ध्वस्त हो गया । इसमें से मुगल सेना टूट पड़ी अन्दर । मराठों के लिए प्रतिकार असम्भव हो गया । निचला हिस्सा माची मुगलों के हाथ आ गया और मराठे ऊपर वाले किले में चले गए ।

निचला हिस्सा कब्जे में आने के बाद मुगलों ने शक्ति केन्द्रित की । छोटे से बाले के किले को जीतने पर पाँच-छः हजार मुगल सेना चल पड़ी बाले किले की ओर । मुरारबाजी ने यह देखा । मुगल हमला करें इसके पहिले ही वे केवल सात सौ सिपाहियों को लेकर बाहर निकले और टूट पड़े मुगलों पर । इन मराठों ने मुगल सेना में हाहाकार मचा दिया । जिस आवेश, निश्चय और प्रण से वे लड़ रहे थे । बेकार कर दिया । मुरारबाजी मारे गए और उनके तीन सौ साथी खेत रहे । पाँच सौ मुगल सैनिक मारे गए । मराठे मुरारबाजी का शव लेकर बाले किले में चले गए ।

मुरारबाजी काम आए इसका बाकी मराठों को दुःख हुआ पर उनके बलिदान ने उनका यह निश्चय भी दृढ़ कर दिया कि प्राण जाय पर दुर्ग न जाने देंगे । बाले किले पर अब थे केवल मुट्ठी भर मराठे । मई 1665 चल रहा था लगभग दो महीनों से वे निरन्तर लड़ते आ रहे थे चालीस हजार फौज के विरुद्ध पर अब भी उनका निश्चय दृढ़ था कि जान देंगे पर पुरन्दर नहीं देंगे । दूसरी ओर दिलेर खाँ ने भी प्रतिज्ञा की थी कि चालीस हजार सेना की सहायता से पुरन्दर लेकर ही रहूँगा और जब तक पुरन्दर पर कब्जा नहीं होगा तब तक पगड़ी नहीं पहनूँगा ।

स्वराज्य का सूर्यग्रहण

पुरन्दर इधर प्राणपण से जूझ रहा था इधर शिवाजी राजगढ़ पर बेवस थे। मुरारवाजी की मृत्यु उनके लिए गहरा आघात था। उनके कई किलों पर मुगल सेना ने हमला बोल दिया था। अब तो उन्होंने सिंहगढ़ की ओर रुख बढ़ाया था। वहां पर थीं जिजाबाई। शिवाजी का सारा प्रदेश मुगल रौंद रहे थे। बाहर से कहीं से सहायता आने का सवाल न था। बीजापुर ने भी इनकार कर दिया। उनके राज्य के अन्दर भी नाकाबन्दी इतनी अच्छी तरह की गई थी कि एक जगह से दूसरी जगह सेना भेजना असंभव था। फिर भी मराठे लड़ रहे थे। जहां मुगल कमजोर होते थे वहां वे छापा मारते थे। पर मुग़ल सेना संख्या में बहुत बड़ी थी और उसके पास हाथी, घोड़ तोपें और लड़ाई का सभी सामान था। उसकी बड़ी तोपों के सामने अगर पुरन्दर जैसा अभेद्य दुर्ग नहीं टिक सका तो कौन-सा किला टिक सकेगा? मुरारबाजी और पुरन्दर का अग्निदिव्य शिवाजी देख रहे थे बेवस। सहायता जा नहीं सकती थी। घेरा बाहर से हमला कर तोड़ा नहीं जा सकता था और वे जानते थे कि जो पुरन्दर का हाल हुआ वही बाकी किलों का भी होगा। वे बीस वर्ष का कार्य अपनी आंखों के सामने नष्ट होते लाचार, बेवस, से होकर देख रहे थे,

संस्कृत वचन हैं कि जब सारा ही नष्ट हो रहा हो तो बुद्धिमान पुरुष आधा बचाने का प्रयत्न करते हैं। शिवाजी ने भी ऐसा ही किया। अगर वे लड़ाई जारी रखते तो उनका सारा राज्य ही चला जाता। सन्धि कर के अगर थोड़ा सा राज्य भी बाकी रहा तो बाकी प्रदेश फिर जीतने की आशा तो रहेगी? उन्होंने राजा जयसिंह के पास दूत भेजकर सन्धि करने की इच्छा प्रकट की। पर राजा जयसिंह ने कहा कि सन्धि तभी हो सकती है जब शिवाजी आत्मसमर्पण करें। उन्होंने यह भी आग्रह किया कि शिवाजी स्वत: उनसे मिलकर प्रार्थना करें तो शायद वे बादशाह से उन्हें क्षमा दिलवा सकें। उन्होंने यह आश्वासन दिया कि अगर शिवाजी मिलने आवें तो उनके साथ कोई दगा न होगा।

इधर यह सब हो रहा था, उधर पुरन्दर पर मुट्ठी भर मराठे अब भी रहे थे। राजा जयसिंह के पास ऐसे समाचार भी आ रहे थे कि शिवाजी और बीजापुर की साँठ-गाँठ चल रही है और सम्भव है कि मुगलों के विरुद्ध वे दोनों एक हो जाएं। ऐसी परिस्थिति में जब शिवाजी ने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की तब उन्हें आश्चर्य हुआ और आनन्द भी। इन दोनों की भेंट जून 1665 में हुई।

राजा जयसिंह की छावनी में छत्रपति शिवाजी अकेले गए निःशस्त्र होकर। तीन दिन वे वहां रहे। सामने पुरन्दर था वहाँ मुट्ठी भर मराठे रात दिन तोपों की मार सह रहे थे। शिवाजी ने किला सौंप देने का आदेश दिया और मराठे सम्मान के साथ किले के बाहर निकल आए। उन्होंने बहुत कष्ट सहा था। लगभग दो महीने से वे मुकाबला कर रहे थे चालीस हजार सेना का। मुगल किला ले न पाए थे। अपने राजा का आदेश पाने के बाद ही मराठों ने किला सौंपा था।

छत्रपति शिवाजी और राजा जयसिंह में क्या बातचीत हुई यह कहना कठिन है। यह सम्भव है कि शिवाजी ने जयसिंह को स्वराज्य की अपनी कल्पना बताई हो और राजपूतों का सहयोग माँगा हो। जयसिंह का सारा जीवन मुगल दरबार में बीता था। अपने अनुभव के आधार पर उन्हें यह विचार हास्यास्पद नहीं तो असम्भव अवश्य लगा होगा। वे जिस परिस्थिति में थे उसमें चाह कर भी वे विशेष कुछ कर नहीं सकते थे। अपने समय के इन दो विशिष्ट पुरुषों की यह भेंट ऐतिहासिक थी। वीरता और राजनीति में दोनों समान रूप से पटु थे। एक को अनुभव अधिक था तो दूसरे में कुछ कर दिखाने की प्रेरणा थी। दोनों परिस्थिति पहचानने में और उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने में कुशल थे। छत्रपति शिवाजी जानते थे कि मुगलों की तोपों और सुसज्जित सेना के सामने टिकना असम्भव है। उधर पुरन्दर ने जयसिंह को भी यह दिखा दिया था कि छत्रपति शिवाजी से लड़कर किले लेना आसान नहीं है। पता नहीं कितने वर्ष लग जाएँ? इस कारण दोनों पक्ष सुलह तो चाहते थे पर इसे कर दिखाना कठिन था क्योंकि दिल्ली में औरंगजेब थे। वे कूटनीति में इनसे कुछ अधिक ही कुशल थे। किसी भी सन्धि पर उनकी स्वीकृति आवश्यक थी, उसके बिना उसका कोई मूल्य न था।

औरंगजेब दक्षिण विजय करना चाहते थे। युद्ध से या कूटनीति से, शिवाजी बीजापुर और गोलकोण्डा को नष्ट करना चाहते थे। शिवाजी का उद्देश्य स्वतन्त्र होना था। इनके बीच थे राजा जयसिंह जिन्होंने मुगलों की सेवा का व्रत लिया था। हिन्दू होने के कारण उन्हें शिवाजी के प्रति सहानुभूति थी, वे उनकी वीरता के प्रशंसक भी थे पर अपनी राजभक्ति की प्रतिज्ञा से वे बँधे हुए थे। महाराष्ट्र की दुर्गमता वे देख चुके थे। शिवाजी के अनुयायियों की वीरता और स्वामिभक्ति का अनुभव उन्हें हो चुका था। वे मुगल साम्राज्य का विस्तार चाहते थे पर जान चुके थे कि इस प्रदेश में मुगल राज्य स्थापित करने के लिए शिवाजी को नष्ट करना नहीं, मांडलिक बना कर रखना आवश्यक है। वे ऐसी सन्धि चाहते थे जिससे शिवाजी की स्वतन्त्रता का स्वप्न तो नष्ट हो जाए पर वे मुगलों के जागीरदार के रूप में रहें और बीजापुर और गोलकोण्डा की विजय में मुगलों की सहायता करें। ऐसी सन्धि करने में कोई अड़चन न पड़े इस कारण उन्होंने शिवाजी और दिलेरखाँ की भेंट भी कराई थी।

शिवाजी और जयसिंह की भेंट के बाद पुरन्दर की सन्धि की शर्तें निश्चित हुई। इसके अनुसार शिवाजी को सिंहगढ़, पुरन्दर जैसे तेईस बड़े किले और उनके आसपास का चार लाख होन (लगभग सोलह लाख रुपये) आमदनी का प्रदेश मुगलों को सौंप देना पड़ा। उनके पास रह गए राजगढ़, प्रतापगढ़, रायगढ़ जैसे बारह दुर्ग और एक लाख होम (चार लाख रुपये) आमदनी का प्रदेश। यह प्रदेश भी उनके पास मुगलों के मांडलिक के रूप में रह गया। बीजापुर के विरुद्ध अभियान में सहायता देना शिवाजी ने स्वीकार किया और यह निश्चय किया गया कि कोंकण और उसके पास का चार लाख होम की आमदनी का प्रदेश बीजापुर से जीतने के बाद उनके पास रहेगा। इसके बदले में शिवाजी मुगलों को चालीस लाख होन, प्रति वर्ष तीन लाख होन के हिसाब से देंगे। शिवाजी के युवराज सम्भाजी को बादशाह की ओर से पाँच हजार घुड़सवारों की मनसब मिलेगी। संभाजी उस समय केवल आठ वर्ष के थे और इस कारण यह निश्चय किया गया कि उनके प्रतिनिधि के रूप में नेताजी पालकर दक्षिण में मुगल सूबेदार की सेवा में रहेंगे।

शिवाजी के लिए काफी बड़ा प्रदेश हाथ से निकल जाने से अधिक दुख इस बात का था कि अब वे मुगलों के मांडलिक बन गए थे। स्वतन्त्रता का उनका स्वप्न चकनाचूर हो गया था। पर आशा इतनी थी कि वे दक्षिण में ही रहेंगे, मुगलों के अन्य मांडलिकों की तरह अपने प्रदेश से दूर नहीं भेजे जाएंगे। सन्धि की प्रतिलिपि औरंगजेब के पास भेजी गई थी। औरंगजेब ने इसे स्वीकार करते हुए

शिवाजी के नाम शाही फरमान भेजा। उस समय की प्रथा के अनुसार शिवाजी दस किलोमीटर पैदल चलकर गए और उन्होंने फरमान का पूरे सम्मान के साथ स्वागत किया।

शीघ्र ही मुगल सेना और शिवाजी के मराठों ने बीजापुर के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया। उन्हें कुछ सफलता भी मिली। इस विजय में शिवाजी का काफी बड़ा हिस्सा था। उनके साथ नेताजी पालकर भी थे। मुगल और मराठा सेनाएँ बीजापुर के पास पहुँच गई। बीजापुर के सुलतान ने भी युद्ध की पूरी तैयारी की हुई थी। जनवरी 1666 में बीजापुर के पास दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। इसमें बीजापुर की सेना विजयी हुई और मुगलों को पीछे हटना पड़ा।

राजा जयसिंह और दिलेरखाँ के बीच दोस्ती नहीं थी। जब औरंगजेब ने उन दोनों को दक्षिण में भेजा था तब भी उन्होंने इन दोनों को एक दूसरे पर नजर रखने के लिए कहा था। वे सबको विशेषत: हिन्दुओं को बड़े सन्देह से देखते थे। राजा जयसिंह शिवाजी से मिल न जाएं इसलिए ही उन्होंने उनके साथ दिलेरखाँ को भेजा था। दिलेरखाँ दक्षिण का सारा सवाल तलवार की जोर से सुलझाना चाहते थे। शिवाजी से सन्धि करना और उन्हें अपनी ओर मिला लेना उन्हें पसन्द नहीं था। बीजापुर के विरुद्ध लड़ाई में जब मुगल सेना आगे बढ़ न सकी तो उन्होंने इसका ठीकरा राजा जयसिंह पर और विशेषतया शिवाजी पर रखा। उन्होंने बादशाह से शिकायत की।

इधर राजा जयसिंह और दिलेरखाँ का मनमुटाव बढ़ गया, उधर मराठा सेना में भी एक बड़ी आश्चर्यजनक बात हो गई। शिवाजी ने नेताजी पालकर को सरनौबत (प्रधान सेनापति) के पद से पदच्युत कर दिया। अब तक के उनके सभी प्रयासों में नेताजी उनके दाहिने हाथ थे। उनको हटाने का कारण यह था कि बीजापुर के बाहर हुई पराजय के बाद शिवाजी ने जयसिंह से कहा कि वे पन्हाला का किला बीजापुर की सेना से लेने का प्रयत्न करेंगे। जयसिंह दिलेरखाँ और शिवाजी को एक दूसरे से दूर रखना चाहते थे क्योंकि दिलेरखां के मन में शिवाजी के प्रति बदी आ चुकी थी और जयसिंह यह वचन दे चुके थे कि शिवाजी के साथ कोई दगा न होगा। इसलिए जब शिवाजी ने पन्हाला पर हमला करने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने इसकी आज्ञा दे दी। शिवाजी हमला करने पन्हाला की ओर बढ़े। नेताजी मुगल छावनी में रह गए। उन्हें शिवाजी ने बाद में आने के लिए आज्ञा दी थी। पर वे गए नहीं। शिवाजी का पन्हाला पर हमला भी असफल रहा। शिवाजी का कहना था कि अगर नेता जी समय पर उनकी सहायता के लिए आ पहुँचते तो पन्हाला में उनकी पराज्य न होती। नेता जी का क्या उत्तर था यह नहीं मालूम पर इसके बाद वे बीजापुर से जा मिले और बाद में राजा जयसिंह ने उन्हें मुगलसेना में पाँच हजार की मनसब देकर अपनी ओर मिला लिया।

इधर यह सब घटनाएँ हो रहीं थी और उधर शिवाजी के जीवन के सबसे रोमांचक अध्याय के सूत्रपात की तैयारी पूरी हो चुकी थी। वह था उनकी आगरा यात्रा, औरंगजेब से भेंट, नज़रबन्दी और सबकी आँखों में धूल झोंक कर वहाँ से बच निकलना। पुरन्दर की सन्धि के कारण स्वराज्य स्थापना के शिवाजी के प्रयत्नों में जो रुकावट आ गई थी वह इसके बाद अपने आप दूर हो गई। औरंगजेब के चंगुल से शिवाजी जिस प्रकार बच निकले उससे सारा देश चकित हो गया और बुद्धिकौशल के लिए शिवाजी की ख्याति में चार चाँद लग गए।

शेर पिंजड़े में बन्द हो गया

पुरन्दर की सन्धि में राजा जयसिंह ने एक शर्त यह भी रखी थी कि शिवाजी मुगल दरबार जाकर बादशाह औरंगजेब को सलाम बजाएँगे। वे इस प्रस्ताव के प्रबल समर्थक थे। उनके मन में औरंगजेब के प्रति स्वामिनिष्ठा पर साथ-साथ शिवाजी के प्रति प्रेम था। उनका विचार था कि अगर ये दोनों एक दूसरे से मिलें तो इनका वैमनस्य समाप्त हो जाएगा। शिवाजी औरंगजेब को अकबर की धार्मिक सहिष्णुता और उदारता की नीति पर लाने में शायद सफल हो सकें। दूसरी ओर शिवाजी भी यह समझ जाएँगे कि उनका हित मुगलों के साथ झगड़े में नहीं मुगलों के आधीन रहने में है।

राजा जयसिंह चतुर थे पर इस मामले में उनका अनुमान गलत निकला। इसका कारण यह था कि वे न तो औरंगजेब को और न शिवाजी को पहिचान पाए थे। औरंगजेब की महत्वाकांक्षा असीम थी और निश्चय अडिग। मुगल सिंहासन पर कब्जा करते समय जिसने बाप को बाप और भाई को भाई न समझा वह शिवाजी जैसे हिन्दू विद्रोही को क्या समझता? दूसरी ओर शिवाजी की स्वतंत्र होने की लालसा भी उतनी ही दुर्दम्य थी। अगर वे केवल बड़े जागीरदार या मन्सबदार बन कर सन्तुष्ट हो सकते थे तो बचपन समाप्त होते ही वे स्वराज्य की स्थापना के प्रयास में क्यों जुट जाते क्योंकि जागीरदार तो वे थे ही? पुरन्दर की सन्धि और मुगलों की अधीनता उन्हें बाध्य होकर स्वीकार करनी पड़ी थी। मुगल दरबार में जाकर बादशाह को सलाम बजाना उन्हें बिलकुल पसन्द न था। औरंगजेब ने अपने भाई भतीजों के साथ जो सलूक किया था वह उन्हें मालूम था। ऐसे आदमी का क्या विश्वास? क्या पता कैद करले या धोखे से मरवा दे? एक डर यह भी था कि जैसे उनके पिता को बीजापुर के सुलतान ने सारे जन्म महाराष्ट्र से दूर रखा वैसे औरंगजेब उनको अगर कहीं दूर भेज दे तो स्वतंत्र होने की उनकी इच्छा अधूरी रह जाएगी। पर मुगलों की अधीनता को स्वीकार करने के बाद वे दरबार में जाने से इन्कार भी नहीं कर सकते थे क्योंकि ऐसा करना यह दिखाना होता कि उन्होंने मुगलों की अधीनता दिखावे के लिए ही मानी है।

शिवाजी की तरह औरंगजेब भी आरम्भ में शिवाजी को दरबार में बुलाने के लिए उत्सुक न थे। जिस तरह शिवाजी को औरंगजेब के प्रति सन्देह था उतना ही औरंगजेब को भी शिवाजी के प्रति भी था। राजा जयसिंह उन दोनों को भले ही न पहिचान पाए हों पर ये दोनों एक दूसरे को बखूबी समझते थे। राजा जयसिंह औरंगजेब और शिवाजी की भेंट के लिए उत्सुक थे। शिवाजी का सन्देह दूर करने के लिए उन्होंने यह वचन दिया कि जब तक शिवाजी मुगल दरबार में रहेंगे तब तक उनकी रक्षा के लिए वे और उनके पुत्र कुंवर रामसिंह व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार रहेंगे। औरंगज़ेब ऐसे वचनों

की कितनी इज्जत करते थे यह वे अब भी समझ न पाए थे। दूसरी ओर वे औरंगजेब से भी आग्रह कर रहे थे कि वे शिवाजी को निमंत्रण दें। बीजापुर की सेना के आगे मुगलों की कुछ चल न रही थी और इस कारण राजा जयसिंह का आग्रह था कि बादशाह कम से कम शिवाजी को तो अपनी ओर मिला लें।

शायद इसी समय दिलेरखाँ ने राजा जयसिंह और शिवाजी की साँठ-गाँठ के बारे में अपना सन्देह व्यक्त किया हो। औरंगजेब के मन में यह शक पहिले से ही था। संभवतः इसी कारण औरंगजेब ने भी निश्चय किया कि शिवाजी को दरबार मेंबुलाया जाए जिससे उनकी और राजा जयसिंह की साँठ-गाँठ अपने आप टूट जाए। इसी समय एक महत्वपूर्ण घटना हुई। लगभग नौ वर्ष बेटे की कैद में रहने के बाद बादशाह शाहजहाँ की 22 जनवरी, 1666 को आगरे के किले में मृत्यु हो गई। भाई भतीजों की निर्मम हत्या कर और पिता को बन्दी बनाकर औरंगजेब ने सिंहासन हथिया लिया था पर जब तक शाहजहाँ जीवित थे तब तक वे अपने आपको निरापद न समझते थे। वे दिल्ली में ही रहते थे और इन नौ वर्षों में आगरा गए ही न थे। उनकी मृत्यु के बाद अब कोई डर न रह गया था। औरंगजेब अब आगरे में रहने लगे और अपनी अगली वर्षगाँठ के अवसर पर 12 मई, 1666 को शिवाजी को दरबार में आने के लिए उन्होंने आदेश दिया। रास्ते के खर्चे के लिए उन्होंने एक लाख रुपये भी भेजे।

अब शिवाजी के सामने कोई चारा न रह गया था। आगरा जाने में जो खतरा था उसे वे अच्छी तरह समझते थे। यह आशा उन्हें कम ही थी कि औरंगजेब उनकी भेंट के बाद अपनी नीति में कोई परिवर्तन करें। पर यह आशा अवश्य थी कि आगरा जाकर वे मुगल साम्राज्य की राजनीति को निकट से देख और समझ सकेंगे। मुगल दरबार में जाने में खतरा था तो यह मौका भी बहुत अच्छा था और शिवाजी ने खतरा झेलने का निश्चय किया। बीजापुर उन्होंने बचपन में देखा था पर मुगल साम्राज्य की राजधानी महाराष्ट्र से बहुत दूर थी और मुगलों से उनका संपर्क प्रायः युद्ध क्षेत्र में ही होता था। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि शिवाजी मुगलों के विरुद्ध मराठों और राजपूतों का संयुक्त मोर्चा बनाना चाहते थे, राजा जयसिंह की इसमें सम्मति थी और इसी योजना की पूर्ति के लिये वे आगरे गए थे। यह जरा असम्भव लगता है क्योंकि उस समय के प्रायः सभी प्रसिद्ध राजपूत राजा मुगलों की पूरी निष्ठा के साथ सेवा कर रहे थे और ऐसी योजना में वे सहयोग दें उसकी आशा कम ही थी।

आगरा जाने का निश्चय करने के बाद शिवाजी ने अपने राजकाज का इस दृष्टि से प्रबन्ध किया कि अगर वे लम्बी अवधि तक वापस न आवें या उनका कोई अनिष्ट भी हो तब भी राज्य के प्रबन्ध में कोई रुकावट न पड़े। जिजाबाई को उन्होंने राज्य का संरक्षक नियुक्त किया और अपने सभी अधिकारियों को आदेश दिया कि वे उनकी आज्ञा मानें। जाने के पहिले उन्होंने अपने प्रमुख दुर्गों को अचानक भेंट देकर यह समाधान भी कर लिया कि सेना की चौकसी और अनुशासन में कोई कमी नहीं आई है।

पाँच मार्च 1666 को शिवाजी आगरे की ओर रवाना हो गए। वे आगरा जा रहें हैं यह जानकर राजा जयसिंह को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने शिवाजी के साथ कोई धोखा नहीं होगा इसकी जिम्मेदारी पहिले ही ले ली थी। अब उन्होंने यह आश्वासन दिया कि औरंगजेब शिवाजी से मिलने और बीजापुर और गोलकोण्डा की विजय में उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं। वे इस भेंट के पक्के समर्थक थे, उनके मन में कोई कपट न था। इसी बीच शिवाजी को भी औरंगजेब का पत्र मिला जिसमें यह आश्वासन दिया गया था कि वे निश्चिन्त होकर मिलने आएं। बाशाह से मिलकर और

सम्मान प्राप्त कर शिवाजी पूरी तरह सन्तुष्ट हो जायेंगे और उन्हें वापस जाने की शीघ्र आज्ञा जायगी। इस पत्र के साथ औरंगजेब ने उनके लिए पोशाक भी भेजी थी।

इस पत्र से और राजा जयसिंह की बातचीत से शिवाजी की जो धारणा हुई थी वह मु दरबार में जाते ही नष्ट हो गई। आगरे में उनकी अगवानी, ठहरने और दरबार में उन्हें ले जाने की व्यवस्था की गई थी वह ऐसी थी मानो वे कोई मामूली जागीरदार हों। यह उपेक्षा देख उन्हें आश्च हुआ। शिवाजी के युवराज सम्भाजी ने दरबार में बादशाह को नजराना पेश किया, उसे औरंगजेब स्वीकार किया पर कहा कुछ नहीं। उसके बाद उन्हें पाँच हजारी मनसबदारों के बीच खड़े रहने लिए कहा गया—



—और शिवाजी के संयम का बाँध टूट गया। पुरन्दर की सन्धि, राजा जयसिंह से हुई बा चीत, अपनी परिस्थिति, मुगल दरबार की शानशौकत और असीम शक्ति सब कुछ भूल गया। याद र केवल इतना कि बादशाह ने उनको भरे दरबार में अपमानित करने के लिए ही दिल्ली बुलाया थ पाँच हजारी मनसबदारों में उन्हें खड़ा करना उपहास था क्योंकि उनके पुत्र सम्भाजी और अभी-अ तक के उनके प्रधान सेनापति नेताजी पालकर दोनों पाँच हजार के मन्सबदार थे। उनका खून खं उठा। और इसके बाद जो हुआ वह मुगल साम्राज्य के इतिहास की अभूतपूर्व घटना थी।

शिवाजी के कुछ आगे जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह खड़े थे। शिवाजी ने दरबार के निय और तरीकों को ठुकरा कर कुँवर रामसिंह से पूछा, 'मेरे आगे यह कौन खड़ा है?' कुँवर रामसिंह उन्हें दरबार ले गए थे। जब उन्होंने कहा कि ये राजा जसवन्तसिंह हैं, तब उन्हें और भी क्रोध आय कई बार तो उनकी सेना जसवन्तसिंह को हरा चुकी थी। अब तक औरंगजेब का ध्यान भी इस अ गया था। उन्होंने रामसिंह से पूछा, 'शिवाजी से पूछो त्यौरियाँ क्यों चढ़ी हैं।'

बादशाह का संदेश जब रामसिंह ने शिवाजी को दिया तो वे बोले 'तुम्हें मालूम है, तुम्हारे पिता को मालूम है और बादशाह को भी मालूम है कि मैं क्या हूँ। मैं भी पाँच हजारी मन्सबदारों में, नौ वर्ष का मेरा बेटा भी पाँच हजारी मन्सबदार और मेरा नौकर नेताजी भी वहीं, यह कोई बात हुई ? मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी मनसब। मुझे खड़ा ही करना था तो ठीक जगह तो सोच लेनी थीं। यह कहकर वे बादशाह की ओर पीठ कर चले गए और एक ओर जाकर बैठ गए । वनराज दरबारी नियमों से कितनी देर बँधा रह सकता था ?

सारा दरबार देखता और सुनता रहा निस्तब्ध ! ऐसा तो आजतक कभी नहीं हुआ था ? यह कैसा आदमी है ? इतने विशाल मुगल साम्राज्य के बादशाह के दरबार में भी इसे डर नहीं लगता बादशाह को भी क्रोध आ गया था । पर वे उसे पी गए और उन्होंने रामसिंह से कहा कि वे शिवाजी को समझा बुझा कर दरबार ले आवें । जब रामसिंह दोबारा गए तो शिवाजी ने उनसे कहा 'मेरा सिर भले ही काट लो पर मैं फिर बादशाह के सामने नहीं आऊँगा ?' तब बादशाह ने अपने तीन प्रमुख सरदारों को उनके पास भेजा और उनसे कहा कि वे शिवाजी को खिलअत-सम्मान की पोशाक-दें और उन्हें दरबार में ले आवें ।

पर अब बात बिगड़ चुकी थी। शिवाजी ने यह खिलअत लेने से भी इनकार कर दिया। उन्होंने कहा 'बादशाह ने जानबूझ कर मेरा अपमान किया है। मेरे जैसे आदमी को खड़ा रखना और वह भी राजा जसवन्तसिंह जैसों के नीचे, मुझे न तुम्हारी मनसब चाहिए न खिलअत।' बादशाह ने तब रामसिंह को आदेश दिया कि वे शिवाजी को अपने घर ले जाकर समझाएँ बुझाएँ। रामसिंह उन्हें साथ ले गए पर शिवाजी का निश्चय अडिग रहा। दूसरे दिन उन्होंने दरबार में सम्भाजी को भेजा खुद नहीं गए।

औरंगजेब और शिवाजी की मित्रता कराने का राजा जयसिंह का प्रयास इस प्रकार विफल रहा। अगर औरंगजेब ने उनके साथ उचित बरताव किया होता तो क्या होता यह इतिहास की पहेली ही बनी रहेगी। शायद उनकी मित्रता के कारण औरंगजेब की नीति में कुछ परिवर्तन आता। दूसरा परिणाम यह भी हो सकता था कि अन्य हिन्दू राजाओं की तरह शिवाजी भी मुगलों की सेवा में अपना जीवन व्यतीत करते। ये दोनों बातें कम ही संभव लगती हैं। औरंगजेब और शिवाजी दोनों अपनी धुन के पक्के थे। अपना ध्येय वे छोड़ नहीं सकते थे। इस कारण दोनों में मैत्री असंभव थी। दोनों इस भेंट से अपने उद्देश्य के लिए लाभ उठाना चाहते थे। शिवाजी दरबार से नाराज होकर चले आए इससे सनसनी फैल गई। लोगों ने बादशाह के कान भरने शुरू किए कि इस अपमान का उन्हें दण्ड मिलना चाहिए। शिवाजी से कैसे निपटा जाय यह औरंगजेब के सामने समस्या थी। वे राजा जयसिंह के वायदे पर आए थे। उनके साथ कोई धोखा करने से राजा जयसिंह और अन्य हिन्दू राजा बिगड़ जाने का डर था। दक्षिण में मराठे बीजापुर और गोलकोण्डा से साँठ-गाँठ कर फिर लड़ाई शुरू कर सकते थे।

औरंगजेब के सामने जो समस्या थी उससे कहीं विकट समस्या शिवाजी के सामने थी। राजा जयसिंह के आग्रह पर और उनके आश्वासन पर वे आए थे। अब यह स्पष्ट हो गया था कि बादशाह उनको एक मामूली जागीरदार से अधिक कुछ नहीं समझता था। बादशाह पूरे दरबार में किए गए उनके बरताव को भुला दे यह असम्भव था। पर वे कर क्या सकते थे ? उनके साथ थे केवल दो ढाई सौ आदमी। नौ वर्ष का पुत्र भी साथ था अपने को बचाने की चिन्ता थी तो कहीं अधिक चिन्ता पुत्र की रक्षा के विषय में थी। 'यह मैं क्या कर बैठा ? मुगल साम्राज्य की राजधानी में वे आ तो गए थे पर निकलना मुश्किल था। जंगल का शेर पिंजड़े में फँस गया था।

पिंजड़ाबन्द—पंछी उड़ गया

अपनी परिस्थिति के बारे में शिवाजी का अनुमान गलत न था। बादशाह उनसे नाराज हों यह स्वाभाविक था। दरबार में उनके कई शत्रु थे जो इस क्रोधाग्नि को भड़का रहे थे। वजीर जाफरखाँ शाइस्ता खाँ के बहनोई थे। अपने साले की तीन कटी हुई उंगलियों का उन्हें बदला लेना था। सूरत शहर से जो तटकर वसूल होता था वह शाहजादी जहाँआरा को मिलता था। शिवाजी ने सूरत लूट ली इस कारण उनकी आमदनी बन्द हो गई इसका उन्हें दुःख था। और भी कई शत्रु थे। इन सबने बादशाह से आग्रह किया कि शिवाजी के उदण्डतापूर्ण व्यवहार के लिए अगर उन्हें दण्ड न दिया गया तो बादशाहत नहीं बनी रहेगी। बादशाह को यह सूचना भी मिली थी कि शिवाजी की निर्भीकता के कारण लोग उनकी प्रशंसा करते हैं।

परिणाम यह हुआ कि बादशाह ने आगरे के कोतवाल को आदेश दिया कि वह शिवाजी के निवास स्थान पर पहरा बैठा दे। उनका बाहर आना-जाना या किसी से मिलना बन्द कर दिया गया। शेर पिंजड़े में पहले ही आ गया था। बादशाह का पहले विचार था कि शिवाजी को उनके निवासस्थान से हटा कर दूसरे मकान में कैद किया जाए। पर इसमें बाधक हुए कुँवर रामसिंह। वे और उनके पिता शिवाजी की सुरक्षा के लिए व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार थे। जयसिंह ने भी बादशाह को सावधान किया कि शिवाजी के साथ अगर दुर्व्यवहार किया गया तो लोगों में अशान्ति फैल जाएगी और परिणाम अच्छा न होगा। कोतवाल के सिपाही शिवाजी का अनिष्ट न करें इसलिए कुँवर रामसिंह ने अपने सिपाहियों को भी तैनात किया। उन्होंने बादशाह को यह जमानत भी दी कि अगर शिवाजी भाग जाएँ तो वे स्वतः जिम्मेदार होंगे।

बादशाह के सामने कई रास्ते थे। शिवाजी को मरवा कर सदा के लिए काँटा दूर करना, उन्हें लम्बी अवधि तक कैद करना, मुसलमान बनाना या उन्हें दिए वचन के अनुसार उन्हें वापस भेजना। वापस भेजना और हाथ आए शिकार को छोड़ देना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। उनके साथ धोखा करने में डर था कि मराठे, राजा जयसिंह और सम्भवतः अन्य हिन्दू राजा भी बिगड़ खड़े होंगे। उनका आग्रह था कि शिवाजी बादशाह के आश्वासन पर आए हैं और बादशाह को अपने वचन की पूर्ति करनी ही चाहिए। इस कारण बादशाह ने निर्णय किया कि शिवाजी को अभी तो किसी सुरक्षित स्थान में कैद करना चाहिए। उनके साथ क्या किया जाए, इसका निर्णय बाद में हो। लेकिन इसमें बाधक थे कुँवर रामसिंह जिन्होंने शिवाजी से वचन लिया था कि वे भाग नहीं जाएंगे, बादशाह के सम्मुख जमानत दी थी और जिनके सैनिक मुगल सिपाहियों के साथ-साथ तैनात थे यह देखने के लिए कि दगा न हो। बादशाह के सामने सवाल था—यह बाधा कैसे दूर की जाए और शिवाजी को सुरक्षित स्थान में कैसे हटाया जाए ?

आश्चर्य होगा यह सुनकर कि रामसिंह की बाधा दूर करने में शिवाजी ने औरंगजेब की सहायता की। औरंगजेब के इरादे अब स्पष्ट हो गए थे। शिवाजी ने बादशाह के पास कई सन्देश भिजवाए थे। एक में कहा—मैं दक्षिण जाकर अपने सारे किले आपको सौंपना चाहता हूँ। उत्तर मिला—इसके लिए दक्षिण जाने की क्या आवश्यकता है? यह काम पत्र से भी हो सकता है। जब उन्होंने कहा—मैं साधू होकर काशीवास करना चाहता हूँ तो उत्तर मिला इलाहबाद में साधू बन कर रहो वहाँ का किलेदार पूरी तरह चौकसी करेगा। औरंगजेब और शिवाजी दोनों कूटनीति में कुशल थे। औरंगजेब उनको छोड़ने के लिए तैयार न थे और शिवाजी जानते थे कि अगर उन्होंने शीघ्र छुटकारा न कर लिया तो उनके भाग्य में लम्बा कारावास या मृत्यु ही लिखी है। दोनों अपना काम कूटनीति से निकालना चाहते थे। उनके दाँवपेंच में बाधक थे कुंवर रामसिंह जिनको दोनों ने वचन दिया था। यह बाधा दोनों दूर करना चाहते थे जिससे वे खुलकर अपने दाँवपेंच खेल सकें।

शिवाजी ने रामसिंह से कहा अगर बादशाह मेरा अनिष्ट चाहता है तो करने दीजिए। आप क्यों बुरे बनते हैं? अपनी जमानत वापस ले लीजिए। औरंगजेब भी यही चाहते थे पर उन्होंने ऐसा करने में आनाकानी दिखाई। काफी आग्रह के बाद ही उन्होंने रामसिंह को वचन से मुक्त किया। इसी के साथ-साथ शिवाजी ने दूसरी प्रार्थना की। उन्होंने कहा मेरे साथ जो सिपाही आए हैं उन्हें लौटने की आज्ञा दी जाए। यह भी औरंगजेब के मन के अनुकूल ही बात थी। यह बाधा दूर हो जाए तो शिवाजी पूरी तरह ही चंगुल में फंस गया, और क्या चाहिए?

इसी बीच शिवाजी के कारावास का स्थान भी निश्चय हो गया था। यह मकान अब लगभग



बनकर तैयार हो चुका था। इसके पूरे होते ही शिवाजी को वहाँ रखने की योजना थी। शिवाजी को आगरा आए अब लगभग ढाई महीने हो चुके थे। और एकाएक शिवाजी बीमार हो गए। वैद्य और हकीम बुलाए पर उनके पेट का का दर्द कम ही न हो रहा था। वे कराह रहे थे। इसी बीच उन्होंने एक एक कर अपने साथ के सभी लोगों को विदा कर दिया था। केवल कुछ ही लोग उनके पास रह गए थे। इनमें प्रमुख थे हिरोजी फर्जन्द और शिवाजी का निजी सेवक मदारी मेहतर। मदारी सोलह सत्रह वर्ष का मुसलमान युवक था। मेहतर उसकी जाति न थी उसकी उपाधि थी और उसका अर्थ था प्रधान या चौधरी।

जब दवादारू से भी शिवाजी के स्वास्थ्य में सुधार न हुआ तो दान धर्म करने का निश्चय हुआ। बड़ी-बड़ी टोकरियाँ मँगाई गईं। उन्हें मिठाई से भरा गया और इन्हें डण्डे की सहायता से दो दो आदमी कन्धे पर लाद कर बाहर ले जाने लगे। पहले दिन इन टोकरियों की पूरी तरह जाँच की गई। सब टोकरियाँ लबालब मिठाई से भरी थीं। बाहर जाकर यह मिठाई बाँटी गई साधुओं और फकीरों को और उनसे कहा गया कि वे शिवाजी के आरोग्य के लिए प्रार्थना करें। शिवाजी की बीमारी का समाचार आगरे में फैल गया। लोगों को यह सन्देह भी हुआ कि बादशाह ने उन्हें विष दे दिया है। हिन्दू सरकारों में बेचैनी फैली।

अब शिवाजी के साथ दो तीन ही आदमी रह गए थे। अपने सिपाहियों को और अन्य साथियों को उन्होंने भेज दिया था। सेना की टुकड़ी को जाने का फरमान मिल चुका था। उनकी तबियत खराब थी। दवादारू चल रही थी, फकीरों और साधुओं को मिठाई भिजवाना जारी था। उनके निवास स्थान पर कड़ा पहरा था। औरंगजेब और आगरे का कोतवाल निश्चिन्त थे। उनको दूसरी जगह हटाने का दिन निश्चित हो चुका था।

पर उस दिन औरंगजेब पर बिजली टूट पड़ी। वे प्रतीक्षा कर रहे थे, इस सूचना की कि शिवाजी को नए कारावास में पहुँचा दिया गया, पर उन्हें समाचार मिला कि इतने कड़े पहरे चौकियों से घिरा हुआ बन्दी शहर कोतवाल और मुगल सेना की आँखों में धूल झोंक कर भाग गया। मुगल दरबार में तहलका मच गया। यह आदमी है या शैतान ? कैसे भाग गया ? और साथ में अपने नौ साल के लड़के को भी ले भागा ? जाँच पड़ताल के बाद जब भागने के तरीके का पता लगा तो मित्र और शत्रु सभी आश्चर्य चकित रह गए।

शिवाजी समझ गए थे कि उन्हें नई जगह भेजने में औरंगजेब का क्या उद्देश्य है। नई जगह से भागना असम्भव होता। इस कारण 17 अगस्त, 1666 को, उनको नई जगह हटाने के एक दिन पहले निकल भागे। अपने छुटकारे की योजना उन्होंने उसी दक्षता से तैयार की थी जैसे किसी मुहिम का आयोजन करते थे। उनकी बीमारी झूठी थी और इस खबर को फैलाने में उनका उदेश्य लोगों का ध्यान बरगलाना और बादशाह और पहरेदारों की चौकसी में ढीलापन लाना था। रोज उनके निवास-स्थान से मिठाई से भरी टोकरियाँ जाती थीं। आरम्भ में इनकी कड़ाई से जाँच होती थी पर जब प्रतिदिन कई टोकरे जाते हों तो कहाँ तक चौकसी होती ?

उस दिन सवेरे से ही वे बिस्तर में पड़े रहे। जब मिठाई की टोकरियाँ जाने लगीं तो शिवाजी एक टोकरी में बैठ गये, दूसरी में बैठे सम्भाजी बाकी टोकरियों में भरी थी मिठाई। पहरेदारों ने एक दो टोकरियों की तलाशी लेकर सन्तोष कर लिया। टोकरियों को कन्धे पर लादे मजदूर बाहर पहुँच गए। पंछी अब आजाद था। टोकरियाँ निश्चित स्थान पर उतार दी गई। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार उनके साथियों ने वहाँ घोड़े तैयार रखे थे। शीघ्र घोड़े हवा से बातें करने लगे।

उधर शिवाजी के निवास स्थान पर हिरोजी फर्जन्द उनके पलंग पर सो गए थे। उन्होंने अपना सिर भी ढक लिया था। केवल हाथ वाहर दिखलाई दे रहा था। हाथ का सोने का कड़ा ही वाहर से दिखाई दे रहा था। यह शिवाजी हमेशा पहनते थे। मदारी मेहतर पायताने बैठा पैर दाव रहा था। हिरोजी बीच-बीच में कराहते भी जा रहे थे। दोनों जानते थे कि अगर उनके नाटक का पर्दाफाश हो गया तो उन्हें मृत्यु मिलेगी और वह भी कठोर यंत्रणा के वाद। सूर्यास्त हुआ। शिवाजी को गए कई घन्टे हो गए थे। अगर वे पकड़ गए होते तो अब तक तहलका मच गया होता पर चारों ओर शान्ति थी। इससे उन्होंने समझा महाराज वच निकले। सूर्यास्त के कुछ देर वाद हिरोजी उठे। विस्तर पर तकिए उन्होंने इस ढंग से रखे मानो कोई सोया हो। पहरेदारों से कहा—महाराज की तबियत अधिक खराब हो गई है जगाना मत। मैं और मदारी अभी दवा लेकर आते हैं। और इस प्रकार वे भी निकल भागे।

इधर पहरेदार पहरा दे रहे थे। उन्हें क्या पता था कि वे छत्रपति शिवाजी की नहीं, खाली मकान की पहरेदारी कर रहे थे? रात बीत गई। अन्दर से जब कोई आहट न आई तो पहरेदारों को संदेह हुआ। वे शिवाजी के कमरे में गए। विस्तर तो क्या सारा मकान खाली था। उन सबको, शहर कोतवाल को, सारे मुगल साम्राज्य को और वादशाह औरंगजेब को बेवकूफ बनाकर शिवाजी निकल भागे थे। वादशाह आगबबूला हो उठा। उनके क्रोध का पहला शिकार था कुँवर रामसिंह। वे निरपराध थे। पर उनकी मन्सव रद्द कर दी गई और दरबार में आना वन्द कर दिया गया। आगरे में धर पकड़ शुरू हो गई। ऐसे सभी लोग जिनका शिवाजी से जरा सा भी सम्बन्ध था संदेह पर कैदखाने में डाल दिए गए। तलाशियाँ आरम्भ हो गईं। दक्षिण को जाने वाले सभी मार्गों पर मुगल अधिकारियों के नाम फर्मान लेकर कि शिवाजी भाग गया है सांडणी सवार रवाना हो गए। यात्रियों की कड़ाई से जाँच पड़ताल करो। निकलने न पावे। पर अब तक शिवाजी को चले बीस वाईस घण्टे हो चुके थे।

आगरे से शिवाजी दक्षिण नहीं, उत्तर गए क्योंकि वे जानते थे कि दक्षिण के रास्ते पर सबसे पहले औरंगजेब की निगाह जाएगी। नौ वर्ष के वालक सम्भाजी को साथ लेकर यात्रा करना निरापद न था। शिवाजी ने उन्हें मथुरा के एक ब्राह्मण परिवार में छोड़ दिया। उन्होंने और उनके साथियों ने साधू बैरागियों का भेष धारण किया और वे चल पड़े दक्षिण की ओर मुगल अधिकारियों और सेना से लुकाछिपी खेलते हुए।

शिवाजी ने दक्षिण जाते हुए लम्बा चक्कर अवश्य काटा होगा क्योंकि सीधे दक्षिण जाने में पकड़े जाने का डर था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार वे काशी, प्रयाग और पुरी भी गए थे। यह असम्भव लगता है क्योंकि ऐसा करने में उन्हें बहुत समय लगता। दक्षिण पहुँचने में कुछ लोगों के अनुसार उन्हें पच्चीस दिन और कुछ के अनुसार ढाई महीने लगे। इतने समय में पुरी, काशी और प्रयाग जाना सम्भव नहीं लगता। ऐसा मालूम पड़ता है कि शिवाजी और उनके साथियों ने थोड़ा दूर का चक्कर काटा और मुगलों की नजर वचा कर वे महाराष्ट्र पहुँच गए होंगे।

शिवाजी के आगरा जाने के वाद जो समाचार आए थे उनसे महाराष्ट्र में चिन्ता व्याप्त थी। उनको औरंगजेब ने वन्दी बना लिया इससे तो और भी गहरी चिन्ता व्याप्त हो गई थी। सारे प्रदेश में मन्नतें मांगी जा रही थीं उनके सकुशल लौटने के लिए। सबसे अधिक चिन्ता जिजाबाई को थी। यही एक पुत्र वच रहा था पर यह तो सारा जीवन आग से खेलता रहा था। इस बार तो इसने नाग के विल में ही हाथ डाला था। औरंगजेब की आँख में धूल झोंक कर शिवाजी बच निकले यह सुखदाई खबर भी उन्हें मिली पर उसके वाद कुछ समाचार उन्हें नहीं मिला था। कहीं यह भी तो औरंगजेब की कोई चाल

न थी ? उनके साथ कोई दुर्घटना तो नहीं हुई ? पकड़े तो नहीं गए ? कहाँ हैं शिवाजी और सम्भाजी ? जिजाबाई का मातृ हृदय यह सब सवाल पूछता और उत्तर न मिलने पर क्रोध व चिन्ता में सुलगता रहता।

और एक दिन राजगढ़ पर कुछ साधू आए। कहने लगे माँ साहब से मिलना है। जब वे जिजाबाई के सामने गए तो उनमें से एक ने आगे बढ़कर पैर पकड़ लिए। जिजाबाई आश्चर्यचकित हो देखती रहीं, अरे यह तो शिवाजी हैं साधू के भेष में। यह खबर चारों ओर फैल गई—महाराज आ गए, औरंगजेब के चंगुल से निकल कर। खुशी की लहर दौड़ गई। राजगढ़ पर शहनाई बजने लगी। शीघ्र ही एक के बाद एक सभी किलों ने, राजगढ़, रायगढ़, प्रतापगढ़, सभी ने तोपों की सलामी से लोगों को सूचित किया छत्रपति शिवाजी आ गए हैं। सूर्य राहु के ग्रहण से मुक्त हो गया है और शीघ्र ही अपने तेज से भूमि को नया जीवन, नई चेतना, नया प्राण देने लगेगा। सारे महाराष्ट्र में दिवाली मनाई गई। मुगल जासूसों ने भी शिवाजी के राजगढ़ पहुँचने का समाचार औरंगजेब को पहुँचा दिया। मुगल अब भी उनकी तलाश में थे। वे हाथ मलते रह गए। सारा देश चकित था शिवाजी की कुशलता पर। उनके बुद्धि कौशल ने कपटप्रवीण औरंगजेब को उनके जीवन की सबसे करारी हार दी थी।

सुराज्य के प्रयत्न

शिवाजी सन् 1666 के अन्त में राजगढ़ पहुँचे थे । पिछले कई वर्षों से लगातार लड़ाई हो रही थी । प्रदेश वीरान हो रहा था, सेना थकी हुई थी, खजाना खाली था और शिवाजी स्वत: भी थके थे । कुछ दिनों के लिए शान्ति आवश्यक थी तैयारी करने के लिए । इस कारण उन्होंने पहले बीजापुर से और फिर मुगलों से सन्धि कर ली । बीजापुर के सुलतान ने इस बीच दक्षिण कोंकण जीतने का प्रयास किया था । यह प्रयास शिवाजी ने विफल कर दिया । इसके बाद दोनों में सन्धि हो गई ।

शिवाजी के निकल भागने के अपयश का ठीकरा औरंगजेब ने रखा राजा जयसिंह और उनके पुत्र रामसिंह पर यद्यपि वे दोनों इस मामले में निरपराध थे । बीजपुर के विरुद्ध अभियान में भी राजा जयसिंह को अपयश ही मिल रहा था । बादशाह ने उनको दक्षिण की सूबेदारी से हटाया और उनके स्थान पर शाहजादा मुअज्जम को नियुक्त किया । राजा जसवन्तसिंह को उनके साथ भेजा गया । दिलेरखाँ को इन दोनों पर नज़र रखने के लिए कहा गया । शाहज़ादा और जसवन्तसिंह दोनों शिवाजी से लड़ चुके थे और जानते थे कि उनको हराना कठिन है । इस कारण जब उनके पास शिवाजी का सन्धि प्रस्ताव आया तो उन्होंने बादशाह से उसका जोरदार समर्थन किया । उधर औरंगजेब भी इस समय दक्षिण में लड़ाई नहीं चाहता था । कारण यह था कि मुगल साम्राज्य की पश्चिम-उत्तर सीमा पर आक्रमण का नया खतरा उत्पन्न हो गया था । इसलिए उन्होंने शिवाजी का सन्धि प्रस्ताव स्वीकार किया ।

शिवाजी ने बादशह को लिखा था कि आगरे से में भाग आया इसका कारण यह था कि मेरी जान को खतरा था । उन्होंने यह आश्वासन भी दिया था कि में बादशाह की सेवा करने के लिए तैयार हूँ और अपने पुत्र सम्भाजी को मुगल सूबेदार के पास भेजना चाहता हूँ । बादशाह ने यह प्रस्ताव मान लिया । उन्होंने शिवाजी की राजा उपाधि स्वीकार की । सम्भा जी को पाँच हजार की मनसब दी गई । शिवाजी के लौटने के बाद उन्होंने सम्भा जी को मथुरा से बुलवा लिया था । वे औरंगाबाद में शाहजादा मुअज्जम के यहाँ अक्तूबर 1667 में हाजरी लगा आए । वे छोटे थे इस कारण उनके स्थान पर प्रतापराव गुजर और निराजी रावजी मराठा सेना की टुकड़ियों के साथ वहां रहने लगे । उनके ख़र्चे के लिए बादशाह ने बरार में जागीर दी । बादशाह ने शिवाजी के दो ब्राह्मण अनुयायियों को उनके बच निकलने में सहायक होने के आरोप पर कैद रखा था उन्हें छोड़ दिया । शिवाजी के सभी साथी अब तक वापस आ गए थे । शिवाजी की उन्होंने बड़े कठिन समय में सेवा की थी । हिरोजी फर्जन्द, मदारी मेहतर, उनके भागने के बाद पकड़े गए दो ब्राह्मण और मथुरा का वह परिवार जिसमें सम्भाजी ब्राह्मण बालक बन कर रहे थे सबको शिवाजी ने दिल खोल कर पारितोषिक दिया ।

पर शिवाजी के आगरा से बच निकलने का दण्ड मिला ऐसे व्यक्तियों को जिनका कोई दोष न था। राजा जयसिंह को दक्षिण की सूबेदारी से हटाया गया। यह अपमान उनसे बरदाश्त न हो सका और उनकी मृत्यु हो गई। कुँअर रामसिंह की मनसब और दरबार में आना बन्द कर दिया गया था। मनसब तो फिर कायम हो गई पर बादशाह की उन पर पहले जैसी कृपा न रही। पर सब से अधिक भुगतना पड़ा नेताजी पालकर को। शिवाजी को छोड़कर वे मुगल सेना में अधिकारी बन गए थे। जब शिवाजी आगरे से भागे तो ये औरंगजेब की क्रोधाग्नि के शिकार हुए। बादशाह ने उन्हें बन्दी बनाकर आगरा मँगवाया। आगरे में इनके सामने दो रास्ते रखे गए। या तो मुसलमान हो जाओ या आजन्म कारावास में रहो। बाध्य होकर ये मुसलमान हो गए। इनका नया नाम हुआ मुहम्मद कुली खां। कल तक जिसे लोग दूसरा शिवाजी समझते थे वह आज मुसलमान था। औरंगजेब ने नेताजी के चाचा और परिवार के अन्य लोगों को भी आगरे बुलवाया था। ये सब भी मुसलमान बनाए गए। नेताजी को पांच हजार की मनसब पहले ही थी वह कायम रखी गई। उन्हें बादशाह की ओर से धन भी दिया गया। नेताजी धर्मपरिवर्तन के लिए बाध्य किए गए थे। मुसलमान होने का वादा करने के बाद जब वे छोड़ दिए गए तब उन्होंने भागने का प्रयास भी किया था पर वह असफल रहा। धर्मपरिवर्तन के बाद बादशाह ने उनको कन्दाहार में मुगल फौज के एक अधिकरी के रूप में भेजा।

अब चारों ओर शान्ति थी और शिवाजी ने इसका उपयोग सुराज्य की कुछ योजनाएँ कार्यान्वित करने में किया। प्रजा लड़ाई से त्रस्त थी उसे राहत देने के लिए शिवाजी ने जमीन का नया बन्दोबस्त किया, जिससे लोग खूब अन्न उगाएँ और राज्य की आमदनी बढ़े। उनकी दूसरी योजना और भी क्रान्तिकारी थी। मुसलमान शासक अपने अधिकारियों को वेतन नहीं जागीर देते थे। परिणाम यह होता था कि राज्य की आमदनी घट जाती थी और शासन कमज़ोर हो जाता था। ये जागीरें वंशपरम्परागत चलती थीं। अगर बाप मर जाए और बेटा छोटा हो तब भी जागीर पद उसके नाम चलता था, काम कोई और करता था। इस कारण शासन ठीक न चलता था और आपसी झगड़े जड़ पकड़ते थे। जागीर प्रथा का एक परिणाम यह भी होता था कि राजा और प्रजा के सम्बन्ध प्रत्यक्ष न रह जाते थे। जागीरदार बिचवई बन जाता था। वह राजा को ठगता और प्रजा को सताता था। ये जागीरदार अपने सिपाही रखते थे। इस कारण विद्रोह जड़ पकड़ता था और राजा की सत्ता कमजोर हो जाती थी। शिवाजी ने यह प्रथा समाप्त की। उनका यह प्रयास क्रान्तिकारी था। लगभग तीन सौ वर्ष बाद स्वतन्त्र भारत ने बिचवइओं को हटाने की यही नीति अपनाई। जागीरदारी समाप्त करने का बहुत विरोध हुआ पर उन्होंने किसी की न सुनी। जागीर किसी को भी, अपने नजदीकी रिश्तेदारी तक का न दी। राजा और प्रजा के बीच कोई बिचवई रहे यह उन्हें सहन न था। इसी कारण वे मन्दिर और मसजिदों को खुले हाथ दान देते थे पर उनके आदेश थे कि साधु-सन्तों को राजकाज में हस्तक्षेप न करना चाहिए और अगर वे करें तो अधिकारियों को उनकी बात नहीं माननी चाहिए। किसानों को बीज आदि के लिए तकावी देने का भी प्रबन्ध था।

इसी तरह उन्होंने स्थल सेना और नौसेना में भी अधिकारियों और सिपाहियों के लिए वेतन की व्यवस्था की। उनकी सेना के दो प्रमुख विभाग थे पैदल और घुड़सवार। दोनों का सेनापति अलग होता था, उसे सरनौबत कहते थे। सेना में अनुशासन कड़ा था। स्त्रियों को साथ ले जाने की, लूटमार मचाने की या लोगों को सताने की सख्त मनाही थी। पदोन्नति अच्छे काम के आधार पर होती थी। उनकी नौसेना में लगभग एक सौ साठ बड़े और छोटे जहाज थे। नौसेना के अलग अड्डे थे। उनकी स्थल और नौसेना दोनों सदा तैयार रहती थी, बड़े से बड़ा काम भी शीघ्र कर गुजरती थीं और इसलिए उनके सभी शत्रु उनसे डरते थे। किलों का प्रबन्ध भी इसी तरह किया गया था कि वह घेरों का लम्बी अवधि तक मुकाबला कर सकें।

बीजापुर और मुगलों से इस समय सन्धि थी। शिवाजी राजकाज ठीक करने के प्रयत्न में लगे रहे पर इस बीच वे बिलकुल शान्त बैठे हों, यह बात नहीं थी। उन्होंने 1666 में गोआ से पुर्तगालियों को निकाल फेंकने का प्रयास किया। पर पुर्तगाली गवर्नर को उनके प्रयास का पहले ही पता चल गया और अचानक हमला करने की उनकी योजना स्थगित करनी पड़ी। गोआ को मुक्त करने का उनका यह स्वप्न लगभग तीन सौ वर्ष बाद भारत स्वतन्त्र होने पर ही पूरा हुआ।

उनका दूसरा प्रयास जंजीरा के सिद्दी को निकाल बाहर करने का था। इसमें उन्हें आरम्भ में सफलता भी मिली पर जब जंजीरा बचाना असम्भव हो गया तो सिद्दी ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली और इस कारण शिवाजी का यह प्रयास भी दिसम्बर 1669 में विफल हो गया।

शान्ति के ये दो तीन वर्ष बड़े जल्दी बीत गए। अपने बल से शिवाजी को हराना असम्भव है यह बीजापुर का सुलतान अब तक समझ गया था। वह उनसे तभी छेड़छाड़ करता था जब उसे मुगलों से सहायता का आश्वासन मिलता था। अब तो उनका मुकाबला मुगलों से था। शिवाजी और औरंगजेब दोनों कूटनीति में प्रवीण, वीर और धुन के पक्के थे। औरंगजेब मुगल साम्राज्य का विस्तार और इस्लाम का प्रचार चाहते थे तो शिवाजी कटिबद्ध थे हिन्दू धर्म की रक्षा और स्वतन्त्र होने के लिए। इन दोनों में जब सन्धि हुई तब भी दोनों जानते थे कि यह स्थायी सन्धि नहीं शस्त्रसंधि है। इन दोनों के बीच फिर लड़ाई शुरू हुई औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के कारण।

सन् 1669 में औरंगजेब की नीति में एक बड़ा परिवर्तन आया। वे अपने परदादा अकबर की तरह धार्मिक मामलों में उदार नहीं यह सन्देह सबको था पर इस वर्ष उन्होंने जो फर्मान जारी किए वैसे किसी धर्मान्ध बादशाह ने भी नहीं किए थे। शाहजहाँ जब तक जीवित थे तब तक औरंगजेब अपने को निरापद न समझते थे। राजा जयसिंह मुगल साम्राज्य के आधार-स्तम्भ थे और जब तक वे थे तब तक औरंगजेब पर थोड़ा-सा दबाव था। इन दोनों की मृत्यु के बाद अब औरंगजेब के दरबार में ऐसा कोई न रह गया जो उन्हें उचित सलाह दे या जिसकी राय का उनकी निगाह में कोई मूल्य हो। स्वत: वे धार्मिक दृष्टि से कट्टर थे पर अब तो वे मुल्ला मौलवियों के हाथ की कठपुतली ही बन गए।

सन् 1669 में काशी के विश्वनाथ और बिन्दुमाधव, गुजरात का सोमनाथ और मथुरा का केशवराय के मन्दिर तोड़े गए। कई जगह मन्दिरों की जगह मस्जिदें बनाई गईं। मन्दिरों को दी गई जमीन वापस ली गई। दीवाली और होली मनाने पर रोक लगा दी गई। साम्राज्य में इस्लाम के नियमों का कड़ाई से पालन हो इसलिए नया विभाग खोला गया और उसके अधिकारी हर सूबे और शहर में नियुक्त किए गए। काशी विश्वनाथ का मन्दिर तोड़े जाने से हाहाकार मच गया। यह तो सारी हिन्दू जाति का अपमान था।

सारे भारतवर्ष में उस समय आशा की एक ही किरण थी और वह था शिवाजी का राज्य। विदेशी यात्रियों ने भी इस बात की गवाही दी है कि जहाँ मुगल साम्राज्य में बहुसंख्य प्रजा धर्म के नाम पर अत्याचार का शिकार हो रही थी वहाँ दूसरी ओर शिवाजी के राज्य में धर्म के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाता था। मुसलमान भी सभी जातियों के हिन्दुओं के कन्धे से कन्धा मिलाकर अपने राजा और राज्य के लिए लड़ते थे और मरते थे।

हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार और मन्दिरों को भ्रष्ट करने के समाचार से शिवाजी क्षुब्ध हों, यह स्वाभाविक था। औरंगजेब अगर अपने राज्य के हिन्दुओं पर इतना अत्याचार कर रहे हैं तो शीघ्र ही वह शिवाजी को नष्ट करने के लिए प्रयास करेंगे यह निश्चित था। इसका सबूत भी शीघ्र

ही मिल गया। सम्भाजी के प्रतिनिधि के रूप में प्रतापराय गुजर और निराजी रावजी औरंगाबाद में मुगल सूबेदार शाहजादा मुअज्जम के साथ रहते थे। शाहजादा इनका बड़ा आदर करते थे। शिवाजी से भी शाहजादे के सम्बन्ध अच्छे थे। शाहजादा और मराठों की यह मित्रता दिलेरखाँ को बिलकुल पसन्द न थी। उसने औरंगजेब के कान भरने शुरू किए कि मराठों की सहायता से शाहजादा आपको अपदस्थ करना चाहता है। औरंगजेब की समझ में यह बात फौरन आ गई। उन्होंने भी तो मुगल सिंहासन पिता को बन्दी बनाकर और भाइयों भतीजों के खून से हाथ रंग कर ही हथियाया था? उन्होंने मुअज्जम के नाम फर्मान भेजा दोनों मराठा सरदारों को बन्दी बनाकर आगरा भेजने के लिए। पर शाहजादा के भी जासूस मुगल दरबार में थे। उन्होंने इश फर्मान के बारे में उन्हें पहले ही सावधान कर दिया। शाहजादा ने प्रतापराव और निराजी को भाग जाने की सलाह दी। वे और उनकी दो तीन हजार सेना चुपचाप मुगल छावनी से निकल गई। जब मुअज्जम को फर्मान मिला तो उन्होने उत्तर दिया कि ये दोनों तो पहले ही निकल भागे हैं। ये दोनों राजगढ़ गए और साथ में बरार की सम्भाजी की जागीर में जो सेना थी उसे भी ले गए।

औरंगजेब ने हिन्दुओं को सताना आरम्भ किया है और मराठा सरदारों को कैद करने का प्रयास किया यह शिवाजी के लिए चुनौती थी। उन्होंने उसे स्वीकार किया। दो तीन साल की शान्ति के कारण सन् 1670 तक सेना तैयार थी, नए अभियान, नई विजय के लिए। पुरन्दर की सन्धि का अपमान उन्हें धो डालना था। सन् 1670 के आरम्भ में उन्होंने जो अभियान चलाया उससे उन्होंने निसंदिग्ध रूप से यह सिद्ध कर दिया कि वे अपने काल के सबसे कुशल और सफल सेनानी हैं। इसके बाद के 3-4 वर्ष में शिवाजी के नेतृत्व में मराठा सेना ने मुगलों के कई बार छक्के छूड़ा दिए। मुगल सेना की ऐसी हार इसके पहले कभी न हुई थी। मराठों ने केवल अपना गया हुआ प्रदेश पुनः जीत कर ही सन्तोष नहीं कर लिया उन्होंने और भी बड़ा भूभाग जीत लिया। बार-बार विजयी होने से मानो शिवाजी की ख्याति में चार चाँद लग गए और इसके बाद ही उनका राज्याभिषेक हुआ—एक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र नृपति के रूप में।

मुगलों और बीजापुर के विरुद्ध प्रबल अभियान और विजय

सन् 1670 में शिवाजी ने मुगलों के विरुद्ध जो नया अभियान चलाया उसका श्रीगणेश बड़े अद्‌भुत ढंग से हुआ। पुरन्दर की सन्धि के कारण उन्हें जो किले मुगलों को सौंपने पड़े थे इनमें दो—सिंहगढ़ और पुरन्दर बड़े महत्व के थे। सिंहगढ़ को तब कोंडाणा कहते थे। यह दुर्ग पूना के पास है और विस्तार तथा दुर्भेद्यता के कारण इसका मुकावला कम ही किले कर सकते हैं। इसे सौंपने में शिवाजी को बड़ा दुख हुआ था पर कोई चारा न था। भौगोलिक और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण यह दुर्ग अब मुगलों के अधीन था और इस पर मराठों का भगवा झण्डा नहीं मुगलों का हरा निशान लहरा रहा था।

और यही निशान जिजाबाई की आँख में चुभता था। वे राजगढ़ पर थीं। वहाँ से कोंडाणा नज़र आता है। उस पर का हरा झंडा देखकर वे दिल मसोस कर रह जाती थीं। एक दिन जब उनसे न रहा गया तो उन्होंने शिवाजी को बुलाया और उन्हें आज्ञा दी 'कोंडणा जीत लो।' शिवाजी को स्वतः कोंडाणा जीतने की बड़ी इच्छा थी पर उन्हें यह भी मालूम था कि यह काम असम्भव सा है। एक तो दुर्ग अभेद्य, दूसरे उस पर उदयभानु जैसा बहादुर और दक्ष किलेदार था और उसके साथ भी लगभग दो हज़ार मुगल और राजपूत सेना। लम्बे घेरे के बाद ही किला जीता जा सकता था, पर तब तक क्या मुगल चुप रहते ? वे बाहर से सेना भेजकर घेरा आसानी से तोड़ सकते थे।

शिवाजी ने यह सब कठिनाई जिजाबाई को बताई पर वे टस से मस नहीं हुई। उनका आग्रह था कुछ भी हो कोंडाणा लेना ही पड़ेगा। शिवाजी धर्मसंकट में थे। जिजाबाई से उन्हें अब तक बराबर प्रेरणा मिलती आई थी और आज वे ऐसा काम करने को कह रहीं थी जो असम्भव था। मातृभक्त शिवाजी असमंजस में थे—सत्तर वर्ष की बूढ़ी माँ की बात टाली नहीं जा सकती थी पर कोंडाणा लेना तो असम्भव लगता था।

इस धर्मसंकट से उन्हें मुक्त किया उनके बालसखा सूबेदार तानाजी मालुसरे ने। पहाड़ के पास उमराठे गाँव के ये रहने वाले थे। बचपन से ही शिवाजी के ये अनुयायी थे। हर कठिन मौके पर शिवाजी के साथ रहते थे. बड़ी धाक थी उनके बल और वीरता की। कोंडाणा जैसे दुर्गरत्न को जीतने के लिए आदमी भी उसी पाए चाहिए। शेरदिल तानाजी ने जिजाबाई और शिवाजी के सामने कोंडाणा जीतने का बीड़ा उठाया। शिवाजी अब निश्चिन्त थे।

तानाजी ने अपने साथ चुने हुए लगभग पाँच सौ मावले लिए। जासूस भेजकर कोंडाणा की रक्षा व्यवस्था की उन्होंने पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। कोंडाणा लेने की तिथि निश्चित की गई 4 फरवरी 1670। शिवाजी को इसकी सूचना दे दी गई और उनसे कहा गया अगर किला जीत लिया गया तो एक झोंपड़ी को आग लगाकर उन्हें सूचना दी जाएगी।



उदयभानु ने कोंडाणा पर पहरे चौकियों की बड़ी अच्छी व्यवस्था की थी। किला दुर्गम अवश्य है पर इसके एक ओर गहरी घाटी है और इस तरफ पहाड़ भी बिलकुल सीधा है। इस ओर से कोई चढ़ सकता है, यह कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। इस कारण इधर पहरे चौकी की व्यवस्था पूरी न थी। तानाजी ने इसका पता लगा लिया था। 4 फरवरी को रात के घनघोर अँधेरे में कुछ मावले इसी तरफ से किले पर चढ़ गए। ऊपर पहुँच कर इन्होंने रस्से नीचे लटका दिए और इनके सहारे से लगभग पाँच सौ सिपाही चुपचाप ऊपर चढ़ गए, कहते हैं चढ़ने के लिए इन्होंने घोरपड (गोह) से सहायता ली थी। यह जानवर पहाड़ पर सीधा चढ़ जाता है और ऊपर पहुंचकर अपने पंजे पहाड़ में गाड़ देता है और चिपट कर बैठ जाता है। मराठों की पहली टोली इसी जानवर की पूछ से बँधे रस्सों के द्वारा ऊपर गई थी। तब उन्होंने और लोगों के लिए रस्से लटकाए।

तानाजी, उनके भाई सूर्याजी और अन्य मराठा सिपाहियों ने किले के अन्दर तहलका मचा दिया। मराठे आ कैसे गए ? कहाँ हैं ? कितने हैं ? पहरेदारों से मारकाट करते हुए वे बढ़ रहे थे किले पर कब्जा करने के लिए। मुगल सेना पहले तो इस अचानक हमले के कारण हतबुद्ध हो गई पर धीरे-धीरे उसने ज़ोरदार प्रतिकार आरम्भ किया। एक तरफ पाँच सौ मराठे थे और दूसरी ओर थे डेढ़ हज़ार मुगल सैनिक। दोनों कोंडाणा को रक्त से नहला रहे थे। मुगल सैनिक संख्या में अधिक थे तो मराठों में ज़िद थी किले पर भगवा झंडा लहराने की। अब तक लगभग पांच सौ मुगल और राजपूत सिपाही मारे गए थे पर अब मराठों की प्रगति रुक सी गई थी। और इसी समय तानाजी और उदयभानु का सामना हो गया। दोनों एक दूसरे पर टूट पड़े। उदयभानु की तलवार के आघात से तानाजी की ढाल टूट गई। दूसरी ढाल लेने का मौका न था वे बाए हाथ पर उदयभानु के वार झेलने लगे।—और उनका एक वार सटीक बैठा उदयभानु धराशायी हो गये। पर तानाजी भी गम्भीर रूप से आहत हो गए थे। उदयभानु के कई वार उन पर पड़ चुके थे। उनके भी प्राण पखेरू उड़ गए।

तानाजी की मृत्यु से मराठे हतोत्साह हो भागने लगे। पर अब तानाजी के छोटे भाई सूर्याजी ने स्थिति सम्हाल ली। उन्होंने मराठों को ललकारा—भागते कहाँ हो ? बाप यहाँ मरा पड़ा है और उसे छोड़कर तुम भाग रहे हो ? उनकी इस ललकार से मराठों में नया जीवन आया। वे लौट पड़े और उन्होंने इस प्रबल वेग से हमला किया कि किले की सेना के पैर उखड़ गए। लगभग एक हज़ार मुगल और राजपूत सिपाही खेत रहे, बाकी बन्दी बना लिए गए। पचास मराठे काम आए। कोंडाणा मराठों के कब्जे में आ गया।

इधर राजगढ़ पर शिवाजी और जिजाबाई प्रतीक्षा कर रही थीं। उनकी आँखें कोंडाणा पर थीं। इतनी दूर से उन्हें पता चलता था कि वहाँ घमासान लड़ाई छिड़ी हुई है पर वे उत्सुक थे यह जानने के लिए कि परिणाम क्या हुआ। इतने में उन्होंने देखा कोंडाणा पर अचानक आग भभक उठी। मालूम पड़ता जैसे किसी ने भारी होली जलाई हो। यही तो विजय का संकेत था। वे प्रसन्न हुए। पर जब उन्हें पता चला कि यह विजय प्राप्त करने में शिवाजी के बाल सखा ने अपने प्राणों की आहुति दी तो वे बहुत दुखी हुए। उन्होंने कहा—दुर्ग मिला पर सिंह चला गया। कोंडाणा का इसी कारण नाम सिंहगढ़ पड़ा।

सिंहगढ़ विजय की इस दुखदाई विजय के कुछ ही दिन बाद शिवाजी के एक पुत्र हुआ। 24 फरवरी 1670 को यह राजकुमार पैदा हुआ। नाम उनका रखा गया राजाराम। शिवाजी की मृत्यु

और सम्भाजी की हत्या के बाद औरंगजेब का प्रतिकार कर मराठा राज्य कायम रखने में इस राज-कुमार का बड़ा हाथ था।

सिंहगढ़ शिवाजी की विजयमाला का पहला पुष्प था। उसके बाद उनकी सेना ने मुगलों पर पर चौतरफा आक्रमण कर दिया और एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त की। सिंहगढ़-विजय के एक ही महीने बाद मराठों ने पुरन्दर भी जीत लिया। वज्रगढ़, चाकण, रोहिडा, कर्नाला, लोहगढ़, राजमाची और माहुली कितने ही छोटे और बड़े किले और पूना, सूपा, इन्दापुर, चादवड़, कल्याण, भिवण्डी और उनके आसपास का सारा प्रदेश मराठों ने विद्युतगति से जीता। ऐसा मालूम पड़ता था जैसे कोई ताकत उन्हें रोक ही नहीं सकती। जुन्नर, परिण्डा, अहमदनगर और बरार का मुगल प्रदेश भी उन्होंने इस बीच लूट लिया। इन विजयों से पुरन्दर की सन्धि का सारा अपमान धुल गया था।

इसके बाद मराठों की सेना शिवाजी के नेतृत्व में फिर एक बार सूरत की ओर घूम गई। उन्हें सूरत पर पहला हमला किए सात वर्ष हो गए थे। सूरत के बाद धनी व्यापारियों से उन्होंने अक्तूबर 1670 में दो दिन धन उगाहा। अंग्रेजों ने उनका प्रतिकार किया, पर अन्त में विवश होकर उन्हें भी शिवाजी के पास नजराना भेजना पड़ा। धन की वसूली हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्म मानने वाले धनिकों से की गई। गरीबों को नहीं सताया गया और न किसी धार्मिक स्थान का अपमान किया गया।

सूरत की लूट का माल लेकर जब मराठे लौट रहे थे तो मुगलों के तीन सरदारों —दाऊदखाँ, बाकीखाँ और इखलासखाँ ने उनका रास्ता रोकने की कोशिश की। दिण्डोरी के पास घमासान लड़ाई हुई। शिवाजी के नेतृत्व में मराठों ने मुगलों को करारी हार दी। लगभग तीन हजार मुगल सिपाही मारे गए। चार हजार घोड़े मराठों के हाथ लगे।

शिवाजी के इस तूफानी अभियान से औरंगजेब को क्रोध आना स्वाभाविक था। एक के बाद एक किले मुगलों के हाथ से निकल रहे थे। शाहजादा मुअज्जम और दिलेरखाँ का आपसी मनमुटाव चरम सीमा पर पहुँच चुका था। बहुत कुछ इस कारण से भी मुगल सेना बराबर मराठों से पिटती जा रही थी। इसी बीच मराठों ने बरार में कारंजा का सम्पन्न नगर लूट लिया था और नासिक के आसपास का प्रदेश जीत लिया था। खानदेश और गुजरात की तत्कालीन सीमा पर स्थित साल्हेर का किला भी शिवाजी ने जनवरी 1671 में जीत लिया था।

औरंगजेब ने शिवाजी का मुकाबला करने के लिए महावतखाँ दिलावरखाँ और बहादुरखाँ को आज्ञा दी। दो एक छोटे किले लेने के बाद बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने साल्हेर का घेरा डाला। घेरा कई महीने चलता रहा साल्हेर का घेरा तोड़ने के लिए शिवाजी अपने पेशवा मोरोपन्त और सरनौबत प्रताप राव को आज्ञा दी। इन दोनों के नेतृत्व में लगभग चालीस हजार पैदल और घुड़सवार सेना सन् 1672 की फरवरी में मुगलों पर टूट पड़ी। मुगल तैयार ही बैठे थे। घनघोर युद्ध हुआ और मराठों ने मुगल सेना को करारी शिकस्त दी। इखलास खाँ और तीस अन्य बड़े मुगल सरदार बन्दी हुए और कई हजार मुगल सैनिक मारे गए। मराठों के हाथ लगभग छः हजार घोड़े, छः हजार ऊँट, सवा सौ हाथी और मुगलों का सारा साज सामान लगा। दिलेरखाँ भाग गए।

साल्हेर की विजय का विशेष महत्व है। जब तक मराठे मुगल सेना से सीधी टक्कर लेने से बचते थे। यह पहला मौका था कि उन्होंने बड़ी मुगल सेना से सीधी टक्कर लेकर उसे पूरी तरह हराया था। इससे पहले उनका आत्मविश्वास बढ़ा और वीरता तथा रणकुशलता के लिए उनकी बड़ी ख्याति हुई। औरंगजेब को साल्हेर की पराजय का गहरा शोक हुआ और वे तीन दिन दरबार में नहीं आए।

साल्हेर के वाद पेशवा मोरोपन्त उत्तर कोंकण गए और उन्होंने जल्हार और रामनगर जीत लिया। शिवाजी के राज्य की सीमा अब सूरत से केवल पचहत्तर किलोमीटर दूर थी। नासिक के आस-पास का सारा प्रदेश उनके कब्जे में था। उनके इस तूफानी अभियान से राज्य का चारों ओर विस्तार हुआ था। मराठों के तलवार की धाक जम गई थी।

शिवाजी और मुगलों की लड़ाई में अब तक बीजापुर के सुलतान ने कोई पक्ष न लिया था। बार-बार की पराजय से चिढ़कर औरंगजेब ने अपने सरदारों की विर्भत्सना करते हुए यह सलाह दी थी कि शिवाजी को नष्ट करने के लिए बीजापुर और गोलकोण्डा के साथ संयुक्त मोर्चा बनाएं। संयोग से लगभग इसी समय बीजापुर में एक ऐसी घटना हुई जिससे औरंगजेब की इस योजना को बल मिला। सन् 1672 में बीजापुर के सुलतान अली आदिलशाह की मृत्यु हो गई। नया सुलतान सिकन्दर केवल पाँचवर्ष का था। उनके अभिभावक के रूप में सारी सत्ता आ गई खवास खां के हाथों में। ये शिवाजी के शत्रु थे। इन्होंने पुराने दीवान की शिवाजी से दोस्ती रखने की नीति बदल दी। इस प्रकार शिवाजी को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा। पर अपने रण कौशल से वे इसमें भी सफल हो गए।

मार्च 1673 में शिवाजी की सेना ने पन्हाला का किला जीत लिया। उन्होंने वांई सातारा का प्रदेश तथा पारली, चन्दनवन्दन आदि किले भी आसानी से जीत लिए। मराठों का मुकाबला करने का काम खवासखाँ ने सौंपा बहलोलखाँ पर। इनकी सेना ने अभी अपना अभियान आरम्भ भी न किया था कि प्रतापराव गुजर ने अप्रैल 1663 के लगभग बीजापुर से 54 किलोमीटर दूर उमरणी में बहलोलखाँ को घेर लिया। उन्होंने और सिद्दी हिलाल ने किसी को पता लगे इसके पहले ही सारी बीजा-पुर छावनी घेर ली। सेना को पीने का पानी भी मिलना दुश्वार हो गया। लाचार होकर बहलोलखाँ को प्रतापराव से दया की भीख मांगनी पड़ी। वादा किया फिर कभी मराठों पर शस्त्र न उठाऊंगा। प्रताप राव को दया आ गई। उन्होंने बहलोलखाँ की प्रार्थना मान ली। मराठों को जीतने के मनसूबे से निकली बीजापुर की विशाल सेना मराठों की छोटी-सी सेना के आगे नतमस्तक हो वापस चली गई।

पर जब शिवाजी को इस बात का पता चला तो उन्हें बड़ा क्रोध आया प्रतापराव ने क्यों ऐसी गलत बात मानी? सारी सेना छोड़ दी यहाँ तक तो ठीक था पर बहलोल खां को बन्दा क्यों नहीं बनाया? किसकी आज्ञा ली थी ऐसी सन्धि करने के लिए। उन्होंने अपने सरनौबत प्रतापराव से जवाब तलब किया। वे जानते थे मराठों के विरुद्ध फिर कभी लड़ाई न करने का बहलोलखाँ का वादा झूठा है। हुआ भी ऐसा ही। उसने शीघ्र ही फिर तैयारी कर ली और मराठों पर हमला कर दिया। यह समाचार सुनकर तो शिवाजी को और भी क्रोध आया। उन्होंने प्रतापराव को लिखा—बहलोल खाँ को तुमने छोड़ दिया, यह बार-बार आता है। इसकी झंझट दूर किए बगैर मुझे मुंह मत दिखाना।

प्रतापराव इस पत्र से मर्माहित हो गये। अब वे इस घात में थे कि बहलोलखाँ को कैसे सबक सिखाया जाए। और ऐसा अवसर शीघ्र ही आया। 24 फरवरी 1647 को उन्हें समाचार मिला कि बहलोलखाँ और शरजाखाँ के नेतृत्व में बीजापुर की सेना गडहिंग्लज के पास एक पहाड़ी रास्ते से जा रही है। मौका अच्छा था क्योंकि बीजापुर की सेना को मराठे इतने पास हैं इसका बिलकुल पता न था। पर इस समय प्रतापराव के पास थोड़े से ही सैनिक थे बाकी सेना काफी पीछे थी। पर देर करने में मौका हाथ से निकल जाने का डर था। केवल सात आठ सिपाहियों के साथ प्रतापराव ने बीजापुर की सेना पर हमला बोल दिया। बदले की भावना ने उन्हें ऐसे साहस के लिए उद्यत किया जिसका परिणाम पहले ही निश्चित था। शब्दशः मुट्ठी भर मराठों ने पूरी सेना पर हमला बोल दिया। उनका साहस देखकर बीजापुर की सेना भी आश्चर्यचकित रह गई। पर सारी सेना के सामने सात आठ सैनिक कितनी देर

टिक सकते ? एक के वाद एक वे मरते गए। छत्रपति ने सरनौबत से कहा था वहलोलखां की झंझट दूर किए विना मुँह मत दिखाना। राजा की इच्छा का पालन करने में उन्होंने प्राणों की वलि दे दी।

मराठा सेना को जब प्रतापराव के आत्मबलिदान का समाचार मिला तो वह आकुल हो उठे सेनापति का बदला लेने के लिए। प्रतापराव की जगह सम्हाली आनन्दराव ने। लेकिन अब वहलोलखाँ अकेले न थे। दिलेर खाँ की सेना भी उनकी सहायता के लिए आ पहुंची थी। इसी कारण मराठे घुस पड़े बीजापुर के प्रदेश में वहलोलखां की जागीर में। उन्होंने जागीर को लूट लिया और वड़ी लूट इकट्ठा की। तीन हजार बैलों पर लूट का सामान लाद कर जब आनन्दराव लौट रहे थे तो 23 मार्च, 1674 को बंकापुर के पास उनकी और वहलोलखां की मुठभेड़ हुई। इसमें मराठों ने बीजापुर की सेना को हराया और गर्डलिङ्ज की हार को जीत में वदल दिया। वहलोलखाँ भाग खड़े हुए। शिवाजी को मटिया-मेट करने का स्वप्न चकनाचूर हो गया।

शिवाजी को यह अभियान आरम्भ किए अब चार वर्ष हो गए थे। इस थोड़े समय में ही उन्होंने मुगल और बीजापुर दोनों से मुकावला कर उन्हें करारी हार दी थी। औरंगजेब जैसा महान शक्तिशाली वादशाह अपनी पूरी ताकत लगा कर भी उन्हें रोकने में असमर्थ सिद्ध हो गया था। इसके पहले वे जागीरदार हैं छोटे राजा हैं, मान्डलिक हैं आदि वातें कही जा सकती थीं पर अपने रणकौशल, साहस और वीरता से उन्होंने एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष रज्य की स्थापना की थी जिसका आधार राजा का पराक्रम और अद्‌भुत प्रतिभा तथा प्रजा का प्रेम और वाहुवल था। महाराष्ट्र में अब नया राज्य स्थापन हुआ है इसमें सन्देह न था। देशी राजा और विदेशी व्यापारी सभी अब शिवाजी का स्वतन्त्र राजा के रूप में मान करते थे। केवल उनका विधिवत् राज्याभिषेक वाकी था।

राज्याभिषेक

सिंह जंगल का राजा है यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वनराज के सर पर कोई मुकुट नहीं रखता, उसका राज्याभिषेक नहीं होता और न उसका कोई सिंहासन या राजमहल ही होता है। पराक्रम उसका राजमुकुट होता है और वह टिका रहता है उसके बाहुबल के आधार पर। इसी तरह मुगल और बीजापुर, अंग्रेज पुर्तगाली और अन्य विदेशी सभी यह मानने के लिए बाध्य हो गए थे कि उनके देखते-देखते उनके विरोध के बावजूद महाराष्ट्र में एक नई राजसत्ता का उदय हुआ है। वे शिवाजी के साथ व्यवहार में इस बात का ध्यान रखने लगे थे। अनुभव के आधार पर उन्हें यह भी पता चल गया था कि शिवाजी की सेना लुटेरों की जमात नहीं है। उनके राज्य में शासन नियमों के अनुसार होता है, न्याय में पक्षपात नहीं होता और धर्म के कारण कोई भेदभाव नहीं किया जाता। उस समय के ही नहीं, आधुनिक राज्यशास्त्र के अनुसार भी शिवाजी और उनका राज्य एक स्वतन्त्र राजा और राज्य के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा करता था।

पर खेद यह था कि अपने ही लोग यह मानने के लिए तैयार न थे। कई सौ वर्ष मुसलमानों के अधीन रहने के कारण हिन्दुओं में यह भावना घर कर गई थी कि राजा का मुसलमान होना आवश्यक है। हिन्दुओं का काम केवल सेवा करना है। दिल्ली, कन्नौज, देवगिरी, वारंगल, पाँड्य, विजयनगर कितने ही बड़े-बड़े हिन्दू साम्राज्य थे। पर इनमें से कोई भी तो मुसलमानों के सामने टिक न सका था। मुसलमान मुल्ला मौलवी इसका कारण बताते थे भगवान की कृपा। उनका कहना था कि मुसलमानों पर भगवान की विशेष कृपा है और इसी कारण उनकी विजय होती है और राज्य का विस्तार होता है। दुर्भाग्य यह था कि हिन्दुओं के धर्मगुरू ब्राह्मण जिनका कर्तव्य आत्महीनता की इस भावना को दूर करना और समाज में नया प्राण फूंकना था वे भी मुल्ला मौलवियों का ही इस मामले में साथ दे रहे थे। कलियुग के ढकोसले की आड़ ले ये जनता को समझाते थे, कलियुग में मुसलमानों का राज्य होगा ही। जब धर्मगुरू का यह हाल हो तो बाकी समाज का क्या कहना? हिन्दू राजा मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करते थे और उनकी निष्ठा के साथ सेवा करते थे इस विश्वास से कि वे अपना विधिलिखित कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। बाकी जनता देखती थी, अन्याय और जुल्म बरदाश्त करती थी, बेबस यह समझ कर कि भाग्य में ऐसा ही लिखा है।

आरम्भ में शिवाजी के प्रयास को लोगों, ने कुतूहल और आश्चर्य से देखा। इतने विशाल और शक्तिशाली मुगल साम्राज्य और बीजापुर के सुलतान से टक्कर लेना पागलपन नहीं तो और क्या है? पर जब उन्होंने देखा कि बड़े-बड़े संकटों को पार कर शिवाजी का स्वप्न साकार हो गया तो उन्हें आनन्द हुआ और सन्देह भी हुआ कि क्या यह विरोध चल सकेगा? अपनी आँखों के सामने उनने असंभव को संभव होते देखा, शिवाजी को एक बार नहीं बार-बार मुगलों और बीजापुर की सेना को पराजित करते देखा फिर भी यह सन्देह बाकी रहा—इस राज्य का आधार क्या है? सैकड़ों वर्ष उन्होंने हिन्दू राज्य और

राजा मुसलमानों के आगे टूटते या झुकते ही देखे थे। कलियुग में ऐसा ही होगा यह उनका विश्वास था। इस अन्धविश्वास के आगे जो उनके सामने प्रत्यक्ष था उस पर भी उनको विश्वास न आता था। किसी फर्मान पर जब तक किसी मुसलमान शासक की मुहर न हो तब उसका क्या मूल्य ? और फिर शिवाजी ? इसका बाप तो जागीरदार था और दादा पटेल ?, यह राजा कैसे हो सकता है ? कुछ लड़ाइयाँ जीत कर ही तो कोई राजा नहीं बन जाता।

शिवाजी को या उनके शत्रुओं को इस बारे में सन्देह न था। राजनीति या युद्धशास्त्र का आधार तथ्य होता है अन्धविश्वास नहीं। वे क्या हैं यह शिवाजी जानते थे और उनके शत्रु अब तक समझ चुके थे। शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक का आयोजन किया अपने राज्य को धार्मिक, सामाजिक और लौकिक आधार देने के लिए।

राज्याभिषेक के प्रस्ताव का विरोध हुआ इस आधार पर कि शिवाजी क्षत्रिय नहीं हैं, उनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ,, और कलियुग में क्षत्रिय रह ही नहीं गए। तीन सौ वर्ष बाद यह पढ़कर हँसी आती है और आश्चर्य भी होता है कि यह आक्षेप ऐसे लोगों ने किया जिन्होंने समाज का नेतृत्व करने के अपने कर्तव्य को भुला दिया था। और ऐसे पुरुष पर किया जिसने अपना क्षात्रियत्व गोत्र बताकर नहीं पराक्रम दिखा कर सिद्ध किया था। यह प्रारंभिक आपत्ति बहुत बड़ी थी।

पर इसका निराकरण किया काशी के पंडित गागा भट्ट ने। इनका परिवार महाराष्ट्र के पैठण तीर्थक्षेत्र से आकर काशी में जा बसा था। इनके परिवार का त्याग और विद्वता के कारण बड़ा मान था। जितने सदस्य थे लगभग सभी महान पंडित। काशी विश्वनाथ का मन्दिर मुसलमान आक्रमण-कारियों ने तोड़ा था। उसे गागा भट्ट के परदादा नारायण भट्ट ने फिर बनवा कर वहां विश्वनाथ की स्थापना की थी। अब यह मन्दिर औरंगजेब ने फिर तोड़ा था। गागा भट्ट के पिता दिवाकर भट्ट भी बड़े विद्वान और भक्त थे। स्वयं गागा भट्ट महान विद्वान थे। कई ग्रन्थ उन्होंने लिखे थे। सरस्वती के अनन्य उपासक थे। कोरे पंडित न थे ज्ञान का उपयोग कैसे करना चाहिए यह अच्छी तरह जानते थे। शिवाजी ने राज्याभिषेक के प्रस्ताव का इन्होंने जोरदार समर्थन किया। उनका कहना था अपने पराक्रम से शिवाजी के सिद्ध कर दिया है कि वे सच्चे क्षत्रिय हैं। अगर उन्हें राज्याभिषेक का अधिकार नहीं तो किसे हो सकता है ? शिवाजी जैसी विभूति सदियों के बाद पैदा होती है यह गागा भट्ट पहचान गए थे। राज्याभिषेक के समर्थन में उनकी आवाज बड़ी प्रभावशाली सिद्ध हुई। उनकी विद्वता, अधिकार और अपनी बात कहने का उनका ढंग इन सबके कारण राज्याभिषेक के विरोधियों की कुछ न चली।

राज्याभिषेक के रास्ते में एक दूसरी अड़चन थी। किसी सार्वभौम हिन्दू राजा का राज्याभिषेक हुए कई सौ वर्ष बीत चुके थे। जिसने राज्याभिषेक देखा हो ऐसा कोई व्यक्ति जीवित होने का सवाल ही न था। इस विषय पर कोई ग्रन्थ भी न था। यहाँ भी गागा भट्ट की विद्वता काम आई। पुराने ग्रंथों का अध्ययन कर उन्होंने इस विषय पर एक पुस्तक लिखी 'राज्याभिषेक प्रयोग'। ज्योतिषियों की सलाह से राज्याभिषेक की तिथि निश्चित हुई शनिवार ज्येष्ठ शुद्ध द्वादशी शक 1569 अर्थात् 5 जून 1674।

अब प्रश्न उठा राजधानी का। अब तक शिवाजी राजगढ़, रायगढ़ या प्रतापगढ़ में रहते थे। राजधानी के लिए उन्होंने रायगढ़ निश्चित किया। इस किले तक पहुँचना आसान न था और जिस पहाड़ पर वह बना था, वह चारों ओर से बिलकुल सीधा था। उस पर आसानी से चढ़ा नहीं जा सकता था। रायगढ़ को राजधानी के अनुरूप बनाने के लिए बड़े जोरों से निर्माण कार्य आरम्भ किया। कुछ इमारतें पहले से ही थीं। अब राज्याभिषेक के लिए विशाल राजसभा बनाई गई, जगदीश्वर के मन्दिर का निर्माण किया गया, पीने के पानी की व्यवस्था की गई। शिवाजी और राजपरिवार के अन्य सदस्यों के

लिए महल, राजकाज से सम्बन्धित इमारतें, वाजार, किसी राज्य की राजधानी के लिए आवश्यक सभी वातों की वहां व्यवस्था की गई ।

शिवाजी का राज्याभिषेक होगा यह सुन कर सारे महाराष्ट्र में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उनके प्रदेश में एक प्राचीन परम्परा फिर स्थापित हो रही थी। जनता और सेना दोनों आनन्द से पागल हो उठीं। एक के प्रेम और दूसरे के बाहुबल से ही तो आज यह दिन आया था। पर एक वृद्धा को सवसे अधिक आनन्द हुआ। ये थीं जिजाबाई। अव इनकी आयु सत्तर वर्ष की हो रही थी। पुत्र के चरित्र-निर्माण में इनका वड़ा हाथ था। स्वराज्य की प्रेरणा इनकी थी, पुत्र को उन्होंने वरावर सलाह दी थी, उसकी विजय को अपनी विजय, उसके खतरे को अपना खतरा समझा था। और उसी प्रतापी पुत्र का सार्वभौम राजा के रूप में आज राज्याभिषेक हो रहा था। ऐसी सौभाग्यशाली माताएं संसार में अव तक कितनी हुई हैं ? राज्याभिषेक के लिए सारे महाराष्ट्र से ही नहीं, दूर-दूर से लोग आए थे। राज्याभिषेक के पहले शिवाजी प्रतापगढ़ गए वहाँ कुलदेवता तुलजा भवानी की इन्होंने पूजा की, छप्पन हजार रुपये का सोने का छत्र देवी को चढ़ाया और फिर रायगढ़ गए ।

मई की 21 तारीख को शिवाजी का यज्ञोपवीत हुआ। महाराष्ट्र के मराठो में उस समय यह संस्काार लुप्त हो चुका था और इसी कारण यह आक्षेप उठाया जाता था कि वे ब्राह्मण नहीं शूद्र हैं। गागा भट्ट ने शिवाजी का उपनयन करा कर इस आक्षेप का भी निराकरण किया। इसके वाद शिवाजी और उनकी रानियों का वैदिक मंत्रों के साथ पुनः विवाह कराया गया। उसके वाद उनकी तुला की गई सोना चाँदी आदि धातुओं तथा अन्य कीमती पदार्थों के साथ और फिर इनका दान किया गया।

राज्याभिषेक सूर्योदय से तीन घड़ी पहले किया गया। अंग्रेज व्यापारी आक्सेण्डन वहाँ उपस्थित था और उसने समारोह का वड़ा मनोरंजक वर्णन किया है। शिवाजी और उनकी प्रधान रानी सोयरावाई सिंहासन पर बैठे। युवराज संभाजी उनके आगे सिंहासन की सीढ़ी पर विठाए गए। यह सिंहासन हाथी दाँत का वनाया हुआ था और उस पर सोने की चादर मढ़ी हुई थी। जगह-जगह जवाहरात लगे थे। इसके चरों ओर चार खम्भे थे उन पर सिंहों की आकृति वनी थी। इन खम्भों के ऊपर तना था वहुमूल्य जरी के कपड़े का चँदवा ।

सिंहासन के चारों ओर खड़े थे शिवाजी के मंत्रिमण्डल के आठ सदस्य और अन्य अधिकारी। अनेक उन स्वर्गीय वीरों की याद ताजी हो उठी थी जिन्होंने स्वराज्य की स्थापना में अपने प्राणों की आहुति दे कर योगदान दिया था। सूबेदार तानाजी मालुसरे, सरनौवत प्रतापराव गुजर, वाजी प्रभु देशपाण्डे, मुरार वाजी, वाजी पासलकर......... और कितने हजार अन्य लोग जिनका इतिहास नाम भी नहीं जानता, जिन्होंने शिवाजी और स्वराज्य के लिए प्राण दिए थे। अव उनके प्रिय राजा का राज्याभिषेक हो रहा था पर अपने स्वप्न को साकार होते देखने के लिए वे जीवित न थे।

गागा भट्ट और अन्य ब्राह्मणों ने वैदिक ऋचाओं के पाठ के साथ शिवाजी का पवित्र नदियों के जल से अभिषेक किया। फिर समुद्र के जल से और उसके वाद गरम पानी से उन्हें नहलाया गया। उसके वाद उनकी शोभा यात्रा निकाली गई। हाथी पर वैठकर वे जगदीश्वर के मन्दिर गए। उनके ऊपर सोने और चाँदी के फूल वरसाए गए। हजारों लोगों ने छत्रपति शिवाजी का जयजयकार किया।

इसके वाद हुआ उनका दरवार। उनकी नवनिर्मित राजसभा वड़े ठाठ से सजाई गई थी। यह विशाल प्रासाद सारे देश से आए लोगों से ठसाठस भरा था। वैदिक मंत्रों का पाठ हो रहा था, शहनाई और अन्य मंगल वाद्य वज रहे थे। शिवाजी के सिंहासन के चारों ओर सार्वभौम राजा के सभी चिन्ह

थे। ध्वज था यह दिखाने के लिए कि वे एक स्वतन्त्र राजा हैं, मछलियाँ बनी थीं समुद्र पर उनकी सत्ता दिखाने के लिए, तुला थी यह दिखाने के लिए कि उनके राज्य में सबको न्याय मिलता है।

शिवाजी के सिंहासन पर बैठते ही तोपों ने गरज कर सलामी देना आरम्भ किया। रायगढ़ की इस सलामी को सभी किलों ने और दुर्गों ने दुहराया सारे देश को जगाने के लिए। शिवाजी ने छत्र धारण किया और उनकी उपाधि हुई 'क्षत्रिय कुलावतंस श्री राजा शिव छत्रपति सिंहासनाधीश्वर'। अपने राज्याभिषेक के वर्ष से उन्होंने नया शका चलाया। यह राज्याभिषेक संवत्सर उनके बाद भी बहुत वर्ष तक प्रचलित रहा। फारसी और उर्दू के स्थान पर मराठी को राजभाषा का स्थान देने के लिए उन्होंने 'राजव्यवहार कोश' का संकलन कराया।

शिवाजी के दरबार में उनके अष्टप्रधान, आठ मंत्रियों के बैठने के निश्चित स्थान थे। इन मंत्रियों के पद संस्कृत तथा फारसी दोनों में दिए गए थे। इनके विभागों का बँटवारा उसी प्रकार था जैसे किसी आधुनिक मंत्रिमण्डल में होता है। सिंहासन के दाहिनी ओर चार मंत्री बैठते थे। ये थे पेशवा अर्थात् मुख्य मन्त्री मोरोपन्त पिंगले, मजूमदार अथवा अमात्य (स्वराज मंत्री) रामचन्द्र नीलकण्ठ, सुरनीस अथवा सचिव (अर्थ मंत्री) अण्णाजी दत्तो तथा वाकेनवीस या मंत्री (निजी सचिव अथवा गृह मंत्री) दत्ता जी त्रिबंक।

बाकी चार मंत्री सिंहासन की बाईं ओर बैठते थे। ये थे : सरनौबत, सेनापति हम्बीर राव मोहिते, डबीर, सुमन्त (परराष्ट्र मंत्री) रामचन्द्र त्रिबंक, न्यायाधीश रावजी निराजी और पंडितराव अर्थात् धार्मिक मामलों के मंत्री रघुनाथ पंडित। पेशवा का वेतन पन्द्रह हजार होन प्रतिवर्ष, अमात्य का बारह हजार होन और अन्य मंत्रियों का दस हजार होन था। होन का मूल्य लगभग चार रुपये था।

राज्याभिषेक के लिए रायगढ़ आये हुए लोगों को शिवाजी ने मुक्त हस्त से दक्षिणा और भेंट दी। गागा भट्ट को एक लाख रुपये दक्षिणा दी गई। अन्य सभी ब्राह्मणों, विद्वानों, साधु-सन्त फकीरों का सम्मान किया गया। अनुयायियों को पुरस्कार दिया। और छत्रपति की नजर पड़ी मुसलमान युवक मदारी पर। वह उनका निजी सेवक था। आगरे से बच निकलने में उसका बड़ा हाथ था। अपना जीवन उसने खतरे में डाला था। जब शिवाजी ने उससे पूछा—तुम्हें क्या दें बोलो। तो उसने उत्तर दिया—अपने सिंहासन का इन्तजाम मेरे सुपुर्द कर दीजिए। और मुझे कुछ न चाहिए।

राज्याभिषेक के अवसर पर शिवाजी ने छत्र धारण किया पर उसके बाद ही वे माँ के छत्र से वंचित हो गए। राज्याभिषेक के समारोह के केवल ग्यारह दिन बाद 17 जून, 1674 को जिजाबाई का स्वर्गवास हो गया। शिवाजी को दुख होना स्वाभाविक था। पैंतालीस पचास वर्ष तक माता ने उनका मार्गदर्शन किया था। पर वे कर भी क्या सकते थे ? जिजाबाई की मृत्यु रायगढ़ से कुछ नीचे पांचाड गाँव में हुई। रायगढ़ बहुत ऊँचाई पर है। वहां की जलवायु उनको न भाती थी इसलिए शिवाजी ने उनके लिए पांचाड में मकान बनवा दिया था। पांचाड में ही उनका दहन किया गया और समाधि बनवाई गई।

राज्याभिषेक समारोह की चहलपहल में भी शिवाजी राजकाज न भूले थे। मुगल और बीजापुर दोनों की गतिविधि पर उनका पूरा ध्यान था। अपने राज्य में कोई अन्याय या गड़बड़ी न हो, इसके लिए वे जागरूक थे। समारोह के केवल एक महीना पहले उन्होंने अपने एक सैनिक अधिकारी को लिखा—जब तक दाना होगा तब तक सिपाही घोड़ों को अन्धाधुन्ध खिला देंगे, जब खतम हो जाएगा

तो घोड़े मरने लगेंगे। तब तुम्हारे सिपाही जाकर किसानों को दाने के लिए सताएंगे। बदनामी तुम्हारी होगी। इसलिए सावधान रहो। जिसे जो चाहिए वह बाजार में जाकर दाम देकर ले। किसी पर जुल्म नहीं होना चाहिए। उधर उस जमाने में किसानों से जबर्दस्ती सामान लेना सेना का अधिकार समझा जाता था और शिवाजी अकेले शासक थे जो जनता पर अत्याचार न हो इसका इतना ध्यान रखते थे।

जुलाई 1674 में मराठा सेना ने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ कोकताश की छावनी लूट ली। औरंगजेब ने इन्हें खास तौर पर मराठों को ठीक करने के लिए भेजा था। पूना से लगभग 80 किलो मीटर पूर्व पेडगाँव में इन्होंने गढ़ी बनाई थी और इसका नाम था बहादुरगढ़। मराठा सेना दो टुकड़ियों में बंटी थी। एक में थे दो हजार सैनिक और दूसरी में लगभग सात आठ हजार। छोटी टुकड़ी बहादुर-गढ़ के पास आई और उसने ऐसे दिखाया मानो वह हमला करना चाहती हो। बड़ी टुकड़ी जंगल में छिपी रही। छोटी टुकड़ी को मार भगाने के लिए जब सारी मुगल सेना बाहर निकली तो मराठों ने पीछे हटना आरम्भ किया। मुगल इस टुकड़ी का पीछा करते करते छावनी से काफी दूर निकल गए। तब बड़ी टुकड़ी ने अचानक बहादुरगढ़ पर हमला कर दिया। छावनी में केवल थोड़े से सिपाही थे। वे मराठों का क्या मुकाबला करते ? मराठों ने सारी छावनी लूट ली। लगभग एक करोड़ रुपये का माल उनके हाथ लगा।

ऐसा मालूम पड़ता है कि इस बीच मराठों का इरादा सूरत फिर लूटने का था। लेकिन उनका रास्ता रामनगर के भीलों ने रोका और इस कारण सूरत बच गया। इस बीच मराठों ने खानदेश में धरण गाँव की अंग्रेजों की आढ़त लूट ली। शिवाजी के नेतृत्व में मराठा सेना उत्तर में बुरहानपुर तक भी हो आई। अंग्रेजों ने धरण गाँव के नुकसान की क्षतिपूर्ति माँगी तो शिवाजी ने उत्तर दिया—"शत्रु के प्रदेश में जब हमारी सेना लड़ रही हो तब अगर किसी का नुकसान हो तो उसे पूरा करने की जिम्मेदारी हमारी नहीं है।"

इस बीच बीजापुर की अन्तरिक हालत ठीक न थी। जंजीरा के सिद्दी को जीतने के प्रयास बार-बार असफल हो चुके थे। शिवाजी इन दोनों मामलों को निपटाना चाहते थे। पर इसके लिए यह आवश्यक था कि मुगलों से शान्ति बनी रहे। उन्होंने मुगल सूबेदार बहादुरखाँ के पास सन्देश भिजवाया —"मैं सन्धि करने के लिए तैयार हूँ। सत्रह किले सौंप दूंगा और सम्भाजी भी पहले की तरह अपनी टुकड़ियों के साथ सूबेदार के पास रहेंगे।" बिना लड़े शिवाजी काबू आ रहे हैं ? बहादुरखां के लिए यह बहुत बड़ा प्रलोभन था। उसने यह भी न सोचा कि जिसने अभी-अभी अपना राज्याभिषेक कराया हो वह अकारण ही ऐसी संधि का प्रस्ताव कैसे भेज सकता है ? सूबेदार ने शिवाजी का प्रस्ताव औरंगजेब के पास भेजा। अब इस ओर से कोई डर का कारण न था।

जनवरी 1675 में मराठा सेना ने बीजापुर के विरुद्ध अभियान आरम्भ किया। कोल्हापुर, कारवार, अंकोला शिवेश्वर आदि के आसपास का प्रदेश मराठों ने जीत लिया। फोंडा का किला उनके हाथ से निकल गया था उसे उन्होंने फिर छीन लिया। जंजीरा के पास पद्मदुर्ग का नया समुद्री किला सिद्दी के विरोध के बावजूद बन गया। पर जंजीरा जीतने का स्वप्न पूरा न हो सका। इसी तरह बेलगाँव जीतने का प्रयास भी असफल रहा। पर शिवाजी का यह अभियान एक दृष्टि से सफल रहा। बम्बई, गोआ और जंजीरा के अतिरिक्त अब सारा कोंकण समुद्र तट उनके कब्जे में था।

यह सारा अभियान समाप्त कर शिवाजी रायगढ़ वापस आए तो उनको मुगल सूबेदार का सन्देश मिला—"बादशाह ने आपके ऊपर कृपा की है और सन्धि का प्रस्ताव मान लिया है। आपके अपराधों को उन्होंने क्षमा कर दिया है।" शिवाजी ने पूछा—"ऐसा कौनसा पराक्रम आपके बादशाह और

सूबेदार ने किया है जिसके आधार पर मैं उन्हें किले सौंप दूं ?" सवाल और उसका अभिप्राय साफ था। बहादुरखाँ को बड़ा दुख हुआ। तो यह केवल चाल थी मुझे भुलावे में रखने के लिए ? और मैं इस चकमे में आ गया। बादशाह ने शिवाजी को काबू में लाने के लिए बहादुरखाँ की पीठ ठोंकी थी, सम्मान किया था। जब उन्हें पता चला कि शिवाजी ने फिर एक बार मुगलों को बुद्धू बनाया तो उन्होंने सूबेदार को बड़ी डाँट पिलाई।

अब तक औरंगजेब एक के बाद एक बड़े सरदारों को शिवाजी के विरुद्ध भेज चुका था। शाइस्ताखाँ, जसवन्तसिंह, जयसिंह, दिलेरखाँ, बहादुरखाँ, महाबतखाँ कोई भी शिवाजी को जीत न सका था। अब किसे भेजा जाए ? और उनकी नजर पड़ी मुहम्मद कुलीखाँ पर। नेताजी पालकर को मुसलमान हुए अब नौ वर्ष बीत चुके थे। अब वे पूरी तरह मुसलमान हो चुके थे। इन नौ वर्षों में उन्होंने मुगलों की सेवा में बड़ी वीरता दिखाई थी। दक्षिण का सारा प्रदेश उन्हें मालूम था। जनता ने जब वे हिन्दू थे तब दूसरा शिवाजी कह कर उनका आदर किया था। बादशाह ने सोचा कांटा कांटे से ही निकल सकता है। उन्होंने शिवाजी के विरुद्ध नेताजी को भेजा। केवल दिलेरखाँ को ही अब तक शिवाजी के विरुद्ध थोड़ी बहुत सफलता मिली थी। उन्हें भी भेजा गया।

मुहम्मद कुलीखाँ मुगल सेना लेकर चले शिवाजी के विरुद्ध। वे महाराष्ट्र की सीमा में आए और एक दिन प्रात.काल वे मुगल छावनी से गायब थे। बड़ी खोज की गई पर पता कैसे चले ? वे तो सरपट घोड़ा दौड़ा रहे थे शिवाजी के पास जाने के लिए। शिवाजी को उन्होंने सारी बात समझाई, बताया कैसे उन्हें जबर्दस्ती मुसलमान बनाया गया, भागने का उनका प्रयास कैसे असफल रहा और किस परिस्थिति में उन्हें मुगलों की सेवा में नौ वर्ष बिताने पड़े।

पर अब चारा क्या था ? उस समय की धारणा के अनुसार कोई हिन्दू अगर मुसलमान का छुआ पानी भी पी ले तो धर्मभ्रष्ट हो जाता था। हिन्दू उसे हिन्दू न मानते थे और विवश होकर उसे मुसलमान बनना पड़ता था। फिर नेताजी तो नौ वर्ष तक मुसलमान बनकर रह चुके थे। उन्हें कोई हिन्दू कैसे स्वीकार करेगा ? तो क्या वे हमेशा के लिए मुसलमान हो गए ? पर यह तो अन्याय है ? अगर कोई हिन्दू बलात् मुसलमान बनाया जा सकता है तो स्वेच्छा से हिन्दू क्यों नहीं हो सकता ?

जिस अद्भुत प्रतिभा से शिवाजी राजनीति और युद्ध के प्रश्न सुलझाते थे उसी से उन्होंने यह सामाजिक प्रश्न भी सुलझाया। उन्होंने बड़े ठाठ से नेताजी की शुद्धि कराई। 19 जून, 1676 को नेताजी फिर हिन्दू हो गए। उस समय के समाज के लिए यह क्रान्तिकारी कदम था। मुल्ला मौलवियों का अब तक विचार था कि हिन्दू को एक बार मुसलमान बना लेना काफी है। फिर वह मुसलमान बना रहे इसलिए मुसलमान नहीं हिन्दू समाज ही सब कुछ करता है। इस धारणा को शिवाजी ने मोड़ा। काँटे से काँटा निकालने की औरंगजेब की योजना नेताजी की स्वामिनिष्ठा और शिवाजी की दूरदर्शिता से विफल हुई।

दक्षिण दिग्विजय

शिवाजी अब सार्वभौम राजा अवश्य हो गए थे पर उनका राज्य बहुत छोटा था। उनके राज्य सीमा उत्तर से दक्षिण तक केवल तीन सौ किलोमीटर थी। चौड़ाई तो इससे भी कम थी। उत्तर में तार की कोई सम्भावना न थी क्योंकि उधर मुगल रास्ता रोके थे। दक्षिण में था बीजापुर का राज्य। जर्जर अवश्य हो गया था पर इतना कमजोर न था कि आसानी से जीता जाए। इसके बने रहने से दा और नुकसान दोनों था। नुकसान यह था कि मुगल, शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर को बराबर साते रहते और शिवाजी के लिए दो मोर्चों पर लड़ाई का खतरा हमेशा बना रहता। फायदा यह था अगर शिवाजी मुगलों की इस चाल को कूटनीति से विफल कर दें और बीजापुर तटस्थ रहे तो ाजी का छोटा-सा राज्य एक ओर से तो सुरक्षित रहता।

राज्य का विस्तार करना आवश्यक था और उतना ही आवश्यक खजाने को भरना था। ाभिषेक के खर्चे के कारण खजाना खाली हो गया था। विस्तार के लिए शिवाजी ने चुना दक्षिण त। विजयनगर साम्राज्य के नष्ट होने के बाद इस प्रदेश में कोई स्थायी सत्ता न रह गई थी। काफी तक बीजापुर का राज्य था। प्रदेश समृद्ध था और यहाँ से काफी राजस्व की आशा थी। दक्षिण य के इस प्रयास में उन्हें दो आदमियों से बड़ी सहायता मिली। इनमें एक थे गोलकोण्डा के सुलतान धान मन्त्री मदन पन्त उर्फ मादण्णा। ये कुशल प्रशासक, राजनीतिज्ञ और विद्वान थे। सुलतान ने य का सारा प्रबन्ध इनके ऊपर छोड़ रखा था। इनके मार्गदर्शन में गोलकोण्डा का राज्य बड़ी प्रगति रहा था। दूसरे व्यक्ति जिसने दक्षिण विजय में बड़ी सहायता दी थी वे थे शहाजी के दीवान नारो हनुमन्ते के पुत्र रघुनाथ पन्त। शहाजी ने एक भाई जनार्दन पन्त को शिवाजी के राज्य के प्रबन्ध के दिया और दूसरे भाई रघुनाथ पन्त को अपने दूसरे पुत्र एकोजी उर्फ व्यंकोजी को दिया।

एकोजी भी वीर और विद्वान थे पर उनका दृष्टिकोण शिवाजी के बिलकुल विपरीत था। वे ापुर सुलतान के बड़े वफादार सेवक थे और उसकी ओर से कई बार शिवाजी के विरुद्ध लड़ भी चुके शिवाजी की तरह एकोजी ने भी तंजौर में अपना राज्याभिषेक कराया था, यद्यपि वह स्वतन्त्र ा न थे। शिवाजी और एकोजी दोनों वीर थे पर एक भाई में स्वतन्त्र होने की जो दुर्दम्य इच्छा थी ा दूसरे में अभाव था।

एकोजी के दीवान थे रघुनाथ पन्त। दोनों में किसी बात पर खटपट हो गई। एकोजी से ट के बाद पन्त शिवाजी के पास आए। उनके भाई वहां पहले से ही थे। उन्होंने शिवाजी को ण भारत की राजनैतिक परिस्थिति की पूरी तरह जानकारी दी। रायगढ़ आते हुए रघुनाथ पन्त ण्णा से निकल चुके थे। दक्षिण भारत की विजय के लिए शिवाजी से सहायता देने का विचार

मादण्णा को पसन्द आया। गोलकोण्डा के सुलतान को भी इन्होंने इसके लिए राजी कर लिया। यह निश्चय हुआ कि शिवाजी खुद सुलतान से मिलेंगे और तभी दक्षिण दिग्विजय की सारी बातें तय होंगी।

आरम्भ में शिवाजी इस प्रस्ताव के अनुकूल न थे। अपने राज्य से इतनी दूर जा कर युद्ध करने में लाभ के साथ खतरा भी था। पर बाद मे उन्होंने यह खतरा उठाने का निश्चय किया। सन् 1676 के अन्त तक दक्षिण विजय की योजना तैयार हो गई। लगभग पच्चीस हजार सेना के साथ छत्रपति शिवाजी रायगढ़ से रवाना हो गए। उनके साथ थे सरनौवत हंबीरराव मोहिते और येसाजी कंक, नेताजी पालकर, सूर्याजी मालुसरे, धनाजी जाधव, बालाजी आवजी, आदि प्रमुख सरदार तथा रघुनाथ पन्त और जनार्दन पन्त हनुमन्ते। सेना को कड़े आदेश थे कि जिस प्रदेश से वह गुजरे वहाँ लूट-मार न होनी चाहिए। राज्य की रक्षा का भार शिवाजी ने सौंपा था पेशवा मोरोपन्त पर।

दक्षिण विजय का अभियान आरम्भ करने से पहले यह देखना आवश्यक था कि सेना की पिछाड़ी सुरक्षित रहे और शत्रु उसकी रसद और रायगढ़ से उसका सम्बन्ध न तोड़ सके। महाराष्ट्र से दक्षिण जाते हुए मार्ग में कोपवल का किला पड़ता है। यह गदग के पास है। दुर्ग बीजापुर के कब्जे में था। यहाँ का किलेदार था एक पठान अब्दुल रहीम खाँ मियाना। यह और इसका भाई हुसैन खाँ प्रजा पर बड़े अत्याचार करते थे। शिवाजी ने हंबीरराव मोहिते और धनाजी जाधव के नेतृत्व में कोपवल जीतने के लिए सेना भेजी। घमासान लड़ाई के बाद अब्दुल रहीम खाँ मारा गया और हुसैन खाँ बन्दी हुआ। कोपवल पर मराठों का अधिकार हुआ। प्रजा को अत्याचार से छुटकारा मिला। मराठा सेना की पिछाड़ी अब सुरक्षित थी।

गोलकोंडा में शिवाजी के स्वागत की बड़ी शानदार तैयारी की गई थी। सुलतान उनकी अगवानी के लिए चार गाँव आगे आना चाहते थे पर शिवाजी ने संदेश भिजवाया—आप बड़े भाई हैं, स्वतः अगवानी करके शर्मिन्दा न करें। पर साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं स्वतन्त्र राजा हूँ, इस लिए सुलतान को झुकर सलाम न करूंगा।

सुलतान की ओर से उनके प्रधानमन्त्री मादण्णा ने शिवाजी का भावानगर (वर्तमान हैदराबाद) में स्वागत किया। गोलकोंडा का किला यहाँ से पास है। सारा नगर शिवाजी के स्वागत के लिए सजाया गया था। स्त्री पुरुष भारी संख्या में उनके दर्शन के लिए एकत्र थे। सदियों के बाद एक स्वतंत्र हिन्दू राजा का इस प्रकार स्वागत हुआ था। शिवाजी के साथ थे उनके सरदार और पीछे थी उनकी सेना। शिवाजी का व्यक्तित्व जैसा शानदार था, उतना ही प्रशंसनीय उनकी सेना का अनुशासन और चुस्ती थी। भावानगर छत्रपति शिवाजी के जय-जयकार से गूँज उठा। जनता शिवाजी पर फूल बरसा रही थी और वे धन लुटा रहे थे।

इस जुलूस के बाद शिवाजी और उनके प्रमुख सरदार सुलतान से मिलने गए। सुलतान अबुलहसन उर्फ तानाशाह और छत्रपति गले मिले। सुलतान ने उन्हें अपने बगल में बैठाया। उनसे नीचे आसन पर बैठे प्रधानमन्त्री मादण्णा। बाकी सब लोग खड़े रहे। इस औपचारिक भेंट के बाद सुलतान और छत्रपति की कई बार भेंट हुई। सुलतान के मन में अगर शिवाजी के प्रति कुछ डर या संदेह रहा तो दूर हो गया। दोनों में खुले दिल से बातें हो गई। शिवाजी लगभग एक महीना सुलतान के अतिथि रहे।

दोनों ओर के प्रतिनिधि दक्षिण दिग्विजय की सन्धि की शर्तें निश्चित कर रहे थे। यह निश्चिय हुआ कि मराठा सेना के खर्चे के लिए सुलतान प्रतिदिन तीन हजार होन देंगे। गोलकोंडा की

पाँच हज़ार सेना मराठों की सहायता करेगी। जो प्रदेश जीता जाएगा उसे मराठे और गोलकोण्डा आधा आधा बाँट लेंगे। दोनों राज्यों के बीच सौहार्द्र बना रहे इसलिए शिवाजी का राजदूत बराबर गोलकोण्डा में रहेगा। शिवाजी प्रतिवर्ष सुलतान को छः लाख होन देंगे।

ये शर्तें तय होने के बाद मराठा और गोलकोण्डा की सेना ने मार्च 1671 में दक्षिण विजय के लिए कूच किया। शिवाजी ने स्वतः इस मुहीम का श्रीगणेश किया निवृत्ति संगम, अनन्तपुर, श्री शैलमल्लिकार्जुन तिरुपति आदि तीर्थक्षेत्रों में पूजा करने के बाद वे मद्रास के आसपास आए। जिंजी का विशाल किला सहज ही उनके हाथ आया और इसे उन्होंने अपने दक्षिणी प्रदेश की राजधानी बनाया। किले की मरम्मत की गई, पीने के पानी का बन्दोबस्त किया गया और राजकाज के लिए आवश्यक इमारतों का निर्माण किया गया। किला सुदृढ़ था और अब तो शिवाजी ने उसे इस योग्य बनाया कि वह लम्बे घेरे का मुकाबला कर सके। प्रभावशाली पुरुषों के बारे में यह कहा जाता है कि भविष्य में क्या होगा इसका उन्हें आभास मिलता है। जिंजी के दुर्ग पर कब्जा करने और उसकी व्यापक मरम्मत कराने में शिवाजी ने जो धन और शक्ति लगाई उससे इस बात की पुष्टि होती है। शिवाजी की मृत्यु के बाद जब औरंगजेब ने मराठा राज्य को नेस्तनाबूद करने का बीड़ा उठाया, मुगल फौज ने सारा महाराष्ट्र रौंद डाला, छत्रपति संभाजी की हत्या की गई तब जिंजी ही मराठा राज्य का केन्द्र था और शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम ने यहीं से राजकाज का संचालन किया।

जिंजी का विशाल किला मराठों ने आनन फानन में जीत लिया लेकिन वेलोर का किला लगभग चौदह महीने के घेरे के बाद ही हाथ आ सका। नलिगढ़पुरम के आसपास का प्रदेश मराठों ने बीजापुर के एक पठान सरदार शेरखाँ लोदी को हराकर जीत लिया। इस प्रकार तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के बीच का हिस्सा अब शिवाजी ने बीजापुर के सुलतान से जीत लिया था।

और शिवाजी का ध्यान अपने सौतेले भाई एकोजी की ओर गया। एकोजी बीजापुर की तरफ से शिवाजी के विरुद्ध कई बार लड़ चुके थे। शहाजी की कर्नाटक की जागीर उनके कब्जे में थी ही, इसके अतिरिक्त तंजौर के आसपास का प्रदेश भी उन्होंने जीत लिया था। वे बीजापुर के समर्थक थे। स्वतन्त्र राज्य की शिवाजी की कल्पना या तो उनकी समझ के परे थी या व्यक्तिगत स्वार्थ के कारण वह उसका विरोध कर रहे थे। बीजापुर का प्रदेश जीत कर लिया जा सकता था पर भाई के साथ तो ऐसा नहीं किया जा सकता था ? पर एकोजी को सबक सिखाना और साम, दाम, दण्ड, भेद से उनकी नीति बदलना भी आवश्यक था।

एकोजी को ठीक रास्ते पर लाने के लिए शिवाजी ने पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे का बहाना बनाया। उन्होंने कहा कि शहाजी की कर्नाटक की जागीर और अन्य धन दौलत का भाइयों में बंटवारा होना चाहिए। बात ठीक मालूम पड़ती है पर अगर बँटवारा ही होना था तो शहाजी की महाराष्ट्र की की जागीर और धन दौलत का भी तो होना चाहिए था ? इसका कहीं उल्लेख न था। इससे और शिवाजी के बाद के व्यवहार से यह सिद्ध होता है कि उनका इरादा एकोजी का प्रदेश हड़पना नहीं उन्हें ठीक राह पर लाना था। जुलाई 1777 में शिवाजी के निमंत्रण पर एकोजी तंजौर से सोलह किलोमीटर दूर तिरुमलवाडी में उनकी छावनी में गए। दोनों भाइयों की यह पहली मुलाकात उस समय की प्रथा के अनुसार मन्दिर में हुई। शिवाजी ने छोटे भाई का प्रेम से स्वागत किया। दोनों भाई लगभग एक सप्ताह साथ रहे। शिवाजी ने स्वराज्य स्थापना के अपने प्रयत्न और उद्देश्य समझाए और एकोजी का सहयोग माँगा। एकोजी सुनते रहे। उन्होंने कहा कुछ नहीं। शिवाजी ने पैतृक सम्पत्ति के बँटवारे का प्रश्न भी उठाया। जब चुप रहना असम्भव हो गया तो एकोजी एक दिन चुपचाप शिवाजी की छावनी से निकल भागे और तंजौर पहुँच गए। शिवाजी ने उनके पास तीन प्रतिनिधि भेजे और बँटवारे की

माँग दोहराई। उत्तर में एकोजी ने कहा—पिताजी को जागीर और सम्पत्ति बीजापुर के सुलतान की सेवा में मिली। शिवाजी ने सदा बीजापुर के विरुद्ध विद्रोह किया। इससे पिताजी को बड़ा नुकसान भी हुआ। मैं अब भी सुलतान का सेवक हूँ। जो कुछ सुलतान आज्ञा देंगे वह करूँगा।

अब एकोजी का रुख स्पष्ट हो गया था। शिवाजी के लिए अधिक ठहरना सम्भव नहीं था। उन्होंने अपनी सेना का अधिकांश हिस्सा हंबीरराव मोहिते के नेतृत्व में पीछे छोड़ दिया और वे वापस रायगढ़ चले गए। एकोजी से निपटने का काम उन्होंने रघुनाथ पन्त और हंबीरराव पर छोड़ दिया। वापस जाते हुए शिवाजी ने एकोजी का अरणी, कोलार, होसकोट, बंगलौर, बालापूर और शिरा का प्रदेश जीत लिया। शिवाजी के वापस लौटने के बाद एकोजी ने हंबीरराव और रघुनाथ पन्त पर हमला किया पर उसकी बुरी तरह हार हुई।

इस लड़ाई का समाचार मिलने पर शिवाजी ने एकोजी को पत्र लिखा। उन्होंने कहा—"मेरे ऊपर देवी-देवताओं की कृपा है। इसी कारण मैं मुसलमानों को पराजित कर सका। और आपको आशा है कि आप इन मुसलमानों की सहायता से मेरी सेना को हरा सकेंगे? दुर्योधन की तरह आपकी मति-भ्रष्ट हो गई और आपने आदमी मरवा दिए। खैर जो हुआ सो हुआ। अब भी सम्भल जाइए और मेरा हिस्सा मुझे दे दीजिए। मैं आपकी तीन लाख की जागीर देने को तैयार हूं। अगर मुझ से जागीर लेने में आपको संकोच हो तो बताइए मैं गोलकोण्डा के सुलतान से जागीर दिलवा दूँगा। मैं आपका हित हित चाहता हूँ। हठ छोड़कर मेरी बात मानिए, आप आनन्द से रहेंगे। अगर आप न मानें तो आपको कष्ट होगा उसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं रहूँगा।" इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि शिवाजी का उद्देश्य एकोजी का प्रदेश लेना नहीं, उनको बीजापुर से अलग करना था।

एकोजी की पत्नी दीपाबाई बड़ी विदुषी और समझदार स्त्री थीं। उनके और रघुनाथ पन्त के समझाने से वे राह पर आए और दोनों भाइयों में सुलह हो गई। इस सन्धि की उन्नीस शर्तें थीं। पहली दस शर्तों में मराठा राज्य के हित की दृष्टि से एकोजी को क्या करना चाहिए यह कहा गया था। एक शर्त यह थी कि एकोजी अपने को बीजापुर का सेवक नहीं समझेंगे। पैतृक सम्पत्ति के जिस हिस्से का बहाना बनाकर शिवाजी ने यह विवाद खड़ा किया था उससे सम्बन्धित शर्तें तो शिवाजी का उद्देश्य और भी स्पष्ट कर देती हैं। होसकोट, शिरा, बंगलौर आदि का एकोजी की जागीर का प्रदेश शिवाजी जीत चुके थे। उन्होंने यह सब प्रदेश दीपाबाई को भेंट कर दिया। तंजौर के आसपास का जीता हुआ प्रदेश शिवाजी ने एकोजी को जागीर के रूप में लौटा दिया। इस प्रकार भाई से जीता हुआ प्रदेश जिस उदारता से शिवाजी ने लौटा दिया उससे स्पष्ट हो जाता है कि उनका उद्देश्य एकोजी को बीजापुर के जागीरदार के रूप में नहीं स्वतन्त्र राजा के रूप में प्रस्थापित करना था। जीत कर फिर प्रदेश लौटा कर उन्होंने एकोजी को बीजापुर के बन्धन से मुक्त कर दिया था।

पर शिवाजी के हाथों हुई इस पराजय से एकोजी दुःखी थे। उनका किसी बात में मन नहीं लगता था। वे उदास हो गए। जब शिवाजी को इसका पता चला तो उन्होंने अपनी मृत्यु के केवल तीन महीने पहले एकोजी को लिखा—"मेरे रहते आपको किस बात की चिन्ता है। मुझे पता चला है कि आप किसी तीर्थस्थान में जाकर रहने की बातें करते हैं। आपकी आयु कुछ कर दिखाने की है। समय बरबाद क्यों करते हैं। अपने पराक्रम से कुछ कर दिखाइए जिससे मुझे भी समाधान हो कि छोटा भाई इतना वीर है।"

जून 1678 में शिवाजी लगभग डेढ़ वर्ष के बाद रायगढ़ वापस आए। उन्हें यह देखकर प्रसन्नता हुई कि इस बीच राजकाज ठीक तरह चल रहा था और कोई गड़बड़ी नहीं हुई थी।

सूर्यास्त ???

गोलकोण्डा ग्रौर शिवाजी की मित्रता ग्रौरंगजेव के लिए चुनौती थी। उनका इरादा वीजापुर ग्रौर गोलकोण्डा की सहायता से शिवाजी के स्वराज्य को नष्ट करना ग्रौर फिर इन राज्यों को जीतना था। दक्षिण भारत के राज्यों में मित्रता रहे तो वे मुगलों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा भी वना सकते थे। ग्रौरंगजेव को यह ग्रभीष्ट न था। कहाँ तो वे शिवाजी को मटियामेट करने की सोच रहे थे ग्रौर ग्रव शिवाजी ने गालकोण्डा के सुलतान से मित्रता स्थापित कर ली थी ग्रौर ग्रपने राज्य का एक नई दिशा में विस्तार कर लिया था। यह उन्हें कैसे पसन्द होता ? जव मराठे ग्रौर गोलकोण्डा की सेना दक्षिण विजय में फँसी थी तव दिलेरखाँ ने गोलकोण्डा पर हमला किया था लेकिन मादण्णा ने उनका यह प्रयास ग्रसफल कर दिया।

लगफग इसी समय वीजापुर के सर्वेसर्वा वहलोलखाँ की मृत्यु हो गई। उनका स्थान लिया सिद्दी मसूद ने। जव शिवाजी पन्हाला से भागे थे तो सिद्दी मसूद ने ही उनका पीछा किया था। वीजापुर में इस परिवर्तन से दिलेरखाँ ने लाभ उठाना चाहा। मुगलों ने वीजापुर पर चढ़ाई कर दी। सिद्दी मसूद ने पुरानी वातों को भुला कर शिवाजी से सहायता माँगी, लिखा, "हम एक ही थाली से खाते रहे हैं। वीजापुर राज्य वना रहे यह ग्राप ग्रौर हम दोनों चाहते हैं। ग्राइए हम ग्रौर ग्राप मिलकर मुगलों का मुकावला करें।" शिवाजी ने इस ग्रनुरोध को स्वीकार किया। उनकी सेना एक ग्रोर वीजापुर की रक्षा में सहायता दे रही थी तो दूसरी ग्रोर वह मुगलों के प्रदेश में लूटमार मचा रही थी जिससे मुगलों का ध्यान वँट जाए। इस प्रकार दक्षिण के दोनों राज्य वीजापुर ग्रौर गोलकोण्डा ग्रव ग्रपनी रक्षा के लिए शिवाजी के संरक्षण में थे। ग्रगर शिवाजी कुछ ग्रधिक वर्ष जीवित रहते तो मुगलों के विरुद्ध दक्षिणी राज्यों का संयुक्त मोर्चा वन जाता। शिवाजी की मदद के कारण मुगल वीजापुर जीत नहीं सके ग्रौर उन्हें घेरा उठाकर वापस लौटना पड़ा। वीजापुर के सुलतान ने शिवाजी को धन्यवाद दिया ग्रौर वहुमूल्य वस्तुएँ भेंट में दीं।

सन् 1679 में ग्रौरंगजेव की धार्मिक कट्टरता का एक ग्रौर रूप प्रकट हुग्रा। वादशाह ने सव हिन्दुग्रों पर जजिया कर लगाया। ग्रकवर ने ग्रपने राज्य में हिन्दू मुसलमान दोनों को एक नजर से देखा, ग्रौरंगजेव ने इस नीति को उलट दिया ग्रौर हिन्दुग्रों से दुराव किया ग्रौर उन पर दण्ड का कर लगाया। जजिया की वसूली कड़ाई से होने लगी। मुगल सूवेदार सभी कर माफ कर सकते थे पर जजिया नहीं। धनी व्यापारी मुगल साम्राज्य के वड़े नगर छोड़ कर जाने लगे। जो गरीव जजिया न दे सकते थे वे इससे वचने के लिए वाध्य होकर मुसलमान वनने लगे। फर्मान का उद्देश्य भी तो यही था।

हिन्दू समाज के इस ग्रपमान के विरुद्ध छत्रपति शिवाजी ने ग्रावाज उठाई। उन्होंने ग्रौरंगजेव को इस विषय पर जो पत्र लिखा उससे उनकी निर्भीकता ग्रौर उनकी धर्मनिरपेक्ष दृष्टि विलकुल स्पष्ट हो जाती है।

शिवाजी ने लिखा था, "आपके परदादा अकबर बादशाह ने बावन वर्ष राज्य किया और उनकी न्यायबुद्धि और दया के कारण उन्हें जगतगुरू कहा गया था। इसी प्रकार आपके दादा जहाँगीर और पिता शाहजहाँ ने भी न्याय से राज्य किया। उन्हें धन की कमी कभी नहीं पड़ी थी। ये सब बादशाह धन उगाहने के लिए जजिया लगा सकते थे पर उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया। वे जानते थे कि हर धर्म का अनुयायी भगवान का ही सेवक होता है। आपके पूर्वजों को लोग अब भी याद करते हैं क्योंकि जैसी नीयत होती है वैसी ही बरकत।

—पर आपने अब जजिया लगाया है। आपके हाथ से धीरे धीरे राज्य जा रहा है। बादशाह और शाहजादों को पैसों की तंगी है फिर सरदारों की क्या हालत होगी? सिपाही परेशान हैं, व्यापारी त्रस्त हैं, मुसलमान रोते हैं और हिन्दू अन्दर ही अन्दर जल रहे हैं। जजिया लगाने से सारे देश में लोग कहते हैं कि भारत के बादशाह गरीब जनता को सताने में और उससे कर उगाहने में ही अब पुरुषार्थ समझते हैं।

—सही देखा जाए तो जजिया लगाना कानून के विरुद्ध है। कुरान शरीफ ईश्वर की वाणी है। उसमें परमात्मा को रब्ब-उल-आलमीन अर्थात् सारे संसार का भगवान कहा गया है रब्ब-उल-मुसलमीन (मुसलमानों का भगवान) नहीं। इसका कारण किसी भी धर्म के मानने वालों पर अत्याचार करना कुरान शरीफ के विरुद्ध है। कहा जाता है गरीब की आह आग से भी अधिक दाहक होती है। इसलिए मेरा अनुरोध है कि आप मन स्वच्छ करें। इस पर भी अगर आपक मन में यही है कि हिन्दुओं को सताना ही धर्म है तो आप मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से सबसे पहले जजिया वसूल करें। वे हिन्दुओं के शिरोमणी हैं। पर अगर आप महाराणा राजसिंह से जजिया नहीं वसूल कर सकते तो गरीब रियाया को सताने में क्या बहादुरी है?

पर शिवाजी की बात का औरंगजेब पर क्या असर पड़ता? शिवाजी को मटियामेट करना उनका ध्येय था और उनको अब नई आशा उत्पन्न हो गई थी। इसका कारण और अब कोई नहीं शिवाजी के बड़े पुत्र युवराज सम्भाजी थे।

सम्भाजी जब छोटे थे तभी तभी उनकी माँ सईबाई का देहान्त हो गया था। दादी ने ही उनका पालन-पोषण किया था। पिता सदैव राजकाज या युद्ध में फँसे होते थे। इस कारण मातृ विहीन सम्भाजी के स्वभाव में उद्दण्डता आ गई थी। सईबाई की मृत्यु के बाद सोयरा बाई शिवाजी की बड़ी रानी थीं। ये चाहती थीं कि उनके पुत्र राजाराम शिवाजी के उत्तराधिकारी हों। इस कारण वे बराबर सम्भाजी के विरुद्ध षड्यंत्र रचती रहतीं थीं। जिजाबाई की मृत्यु के बाद तो सम्भाजी पर प्रेम करने वाला कोई भी न रहा। पिता का अनुशासन उन्हें पसन्द न था। सौतेली मां से उनकी खटपट रहती थी। सम्भाजी शिवाजी से भी अधिक सुन्दर थे। वीरता और शक्ति में भी वे पिता से किसी तरह कम न थे। पर उनमें पिता की दूरदर्शिता, संयम और ध्येय के लिए कष्ट सहने की क्षमता न थी। शिवाजी ने उनको ठीक राह पर लाने के बड़े प्रयत्न किए। समझाया, बुझाया, समर्थ रामदास के पास रखा और कुछ समय तक तो नजरबन्द भी रखा पर परिणाम बिलकुल उल्टा हुआ। सम्भाजी के मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि पिता भी मेरे विरुद्ध हैं। इस भावना से रहा सहा विवेक भी नष्ट हो गया। वे भूल गए वे किसके पुत्र हैं, पिता का जीवन क्या शिक्षा देता है। भूल गए पिता को और उसके स्वराज्य को। एक दिन मौका पाकर सम्भाजी सपरिवार निकल भागे और जा मिले मुगलों से। सम्भाजी के भागने का समाचार मिलते ही शिवाजी ने सेना को आदेश दिया सम्भाजी को वापस लाने के लिए। टुकड़ियाँ निकल पड़ीं पर तब तक सम्भाजी मुगल छावनी में पहुँच चुके थे। मुगल सेनापति दिलेरखाँ के लिए इससे बड़ा वरदान क्या हो सकता था? सम्भाजी का उन्होंने बड़े ठाठ से स्वागत किया। उन्हें सात

हजार की मनसब दी गई। औरंगजेब को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। सम्भाजी की सहायता से शिवाजी को जीतने की योजना बनाई गई।

सबसे पहले हमला किया गया सातारा जिले में भूपालगढ़ जीतने पर। यह दुर्ग मौके की जगह है और इसी कारण शिवाजी ने इसकी मरम्मत पर बड़ा व्यय किया था। दिलेरखाँ और सम्भाजी मुगल सेना लेकर इस किले की ओर चल पड़े। भूपालगढ़ के किलेदार थे फिरंगोजी नरसाला, बड़े वीर और स्वामिभक्त। किले पर तोपें थीं पर हमले का नेतृत्व कर रहे थे मराठों के युवराज सम्भाजी। तोपें दागने में डर था युवराज के प्राण का। फिरंगोजी ने सोचा अगर युवराज को कुछ हो गया तो महाराज को कैसे मुँह दिखाऊँगा। नतीजा यह हुआ कि तोपें दागी नहीं गई और मुगल सेना बिना विरोध के किले तक पहुँच गई। फिर तो काम आसान था। भूपालगढ़ पर मराठों के झंडे की जगह मुगल हिलाल लहराने लगा। मराठों के अपने युवराज के सामने मुगलों ने मराठा सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिया या उनके हाथ काट दिए। भूपालगढ़ ध्वस्त कर दिया गया।

जब फिरंगोजी ने शिवाजी को सारी बात बताई तो वे बड़े नाराज हुए। उन्होंने कहा—"ऐसे युवराज की क्या मुरव्वत जो शत्रु से जा मिले। तुम्हें बेधड़क तोपें दागनी चाहिए थीं।" पिता के दिल में पुत्र के प्रति अथाह प्रेम था पर कर्त्तव्य को वे सबसे अधिक महत्त्व देते थे। इस कारण एक ओर तो उन्होंने सम्भाजी को फिर वापस बुलाने के प्रयत्न जारी रखे लेकिन दूसरी ओर इस बात का भी ध्यान रखा कि जो भूपालगढ़ में हुआ वह कहीं और न हो। राज्य के सभी अधिकारियों को आदेश दिए गए कि हमला करने वाला कोई भी हो मुकाबला डटकर करो। किलों को हाथ से मत निकलने देना।

इधर मुगल छावनी में सम्भाजी की स्थिति अच्छी भी न थी। उनका अपना मन उन्हें कचोट रहा था पिता से द्रोह करने के लिए। भूपालगढ़ में मराठा सैनिकों के साथ जो व्यवहार हुआ और अन्य जगह भी मुगलों ने जनता पर जो अत्याचार किए उसे उन्होंने देखा, बेबस होकर जब उन्होंने विरोध करने का प्रयत्न किया तो उन्हें रूखा उत्तर मिला—"सलाह देने वाले आप होते कौन हैं?" मुगल भी अब तक यह समझ चुके थे कि सम्भाजी की आड़ लेकर मराठा राज्य में फूट डालना सम्भव नहीं। सम्भाजी मुगलों से जा मिले, परन्तु कोई भी मराठा सरदार उनका साथ देने नहीं आया था। सम्भाजी को भी अनुभव हो गया कि मराठे ही नहीं मुगल भी उनको पितृद्रोही समझते हैं। उनकी आँखें खुल गईं।

अगर कुछ कमी थी तो वह औरंगजेब ने पूरी कर दी। उन्होंने हुक्म दिया कि सम्भाजी को बन्दी बना कर मेरे पास भेजो। मुगल सेना में सम्भाजी के बहनोई महादजी निम्बालकर थे। उन्होंने सम्भाजी की कड़ी भर्त्सना की और बादशाह के आदेश के बारे में उन्हें सावधान किया। सम्भाजी जानते थे ऐसे आदेश का क्या अर्थ होता है। नेताजी पालकर ऐसे ही पकड़वा कर बुलवाए गए थे। उसके बाद कठोर यंत्रणा देकर उन्हें मुसलमान बनाया गया था। मुगलों के व्यवहार से वे पहले ही रुष्ट थे। अब उन्हें अपनी भयानक परिस्थिति का भी भान हुआ।

सन् 1670 की 20 नवम्बर को सम्भाजी मुगल छावनी से निकल भागे। अपनी पत्नी येसूबाई को उन्होंने मरदाना लिबास पहनाया था जिससे भागने में आसानी हो। वे पहले बीजापुर गए। वहाँ सिद्दी मसूद ने उनका स्वागत किया। पर दिलेरखाँ ने उन पर सम्भाजी को सौंपने के लिए दबाव डाला। इस कारण वे वहाँ से भी बच निकले। मराठों की टुकड़ियाँ उनकी खोज में थी ही। उन्हें पहले ही आदेश दिए गए थे कि सम्भाजी दोबारा मुगलों के चंगुल में न फँस जाएँ। उन्होंने युवराज और उनके परिवार को सकुशल पन्हाला पहुँचा दिया।

शिवाजी को समाचार मिला । वे पन्हाला गए । बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गई थी । अगर अपना बटा ही शत्रु से जा मिले तो स्वराज्य की स्थापना का दावा निरर्थक था । पुत्र की उद्दण्डता और पत्नी के षड्यन्त्रों से वे दुःखी थे । इस गृहकलह ने उनका दिल तोड़ दिया था । वे पन्हाला लगभग एक महीना रहे । उन्होंने सम्भाजी को सही रास्ते पर लाने की पूरी कोशिश की । शिवाजी की छः लड़कियाँ थीं, सबके विवाह हो चुके थे । युवराज सम्भाजी का विवाह हो चुका था और उन्हें एक कन्या भी थी । केवल छोटे पुत्र राजाराम का विवाह बाकी था । वह भी निश्चित हो चुका । उन्होंने सम्भाजी से कहा—"मैं राजाराम के विवाह के लिए रायगढ़ जा रहा हूँ । उसके बाद मैं फिर वापस आऊँगा तब विस्तार से बातें करेंगे ।" किसे पता था कि वे फिर वापस न आ सकेंगे ।

रायगढ़ जाते हुए शिवाजी सज्जनगढ़ गये । वहाँ समर्थ स्वामी रामदास के पास उन्होंने कुछ समय बिताया । फिर वे रायगढ़ गए । मार्च 1680 को राजाराम का जनेऊ हुआ । एक सप्ताह बाद उनका विवाह हुआ । वधू थीं शिवाजी के सरनौबत स्वर्गीय प्रतापराव गुजर की कन्या जानकीबाई ।

विवाह की शहनाइयों के स्वर अभी गूँज ही रहे थे कि 23 मार्च को शिवाजी को ज्वर आ गया । लगभग चालीस वर्ष निरन्तर संघर्ष के कारण शरीर कमजोर हो गया था । पारिवारिक क्लेश ने मन दुःखी कर दिया था । बचपन और जवानी के बहुत से सखा, सहयोगी और अनुयायी स्वराज्य के प्रयास में शहीद हो चुके थे । पन्द्रह वर्ष की आयु के बालक का स्वप्न पूरा हो चुका था । देश के कम से कम एक भाग में ऐसा राज्य स्थापित हो चुका था जहाँ अन्याय नहीं होता था और प्रजा सम्मान के साथ रह सकती थी । अब इस राज्य को कायम रखना दूसरों का काम था ।

छत्रपति शिवाजी की हालत बिड़गती ही गई । दवादारू से कोई लाभ न हो रहा था । रायगढ़ और सारे महाराष्ट्र में गहरी चिन्ता फैल गई । पर शिवाजी शान्त थे । उन्होंने जीवन भर संकटों का मुकाबला धैर्य से किया था । आज वे मृत्यु का भी वैसे ही धीरज से सामना कर रहे थे । 3 अप्रैल 1680 (चैत्र सुदी पूर्णिमा) के दिन मध्यान्ह के लगभग वे स्वर्ग सिधार गए ।

अपने जीवन काल में उन्होंने देश के इतिहास में एक ऐसा अध्याय जोड़ा जो सदा याद रहेगा । पददलित हिन्दू जाति में नया आत्मविश्वास पैदा करना उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य है । मुगल और बीजापुर की सुसज्जित सेना के मुकाबले में उन्होंने सीधे सादे किसानों की ऐसी सेना खड़ी की जिससे सभी थर्राते थे । उनके बारे में उनके कट्टर शत्रु औरंगजेब ने कहा—"शिवाजी महान नेता थे । जब मैं भारत के पुराने राज्यों को नष्ट करने का प्रयास कर रहा था तब उन्होंने अपनी प्रतिभा से एक नया राज्य स्थापित किया । मेरी सेना उनके विरुद्ध उन्नीस वर्ष लड़ती रही । फिर भी उनके राज्य का बराबर विस्तार होता गया ।" औरंगजेब की झुंझलाहट को प्राचीन कवि और इतिहासकार सभासद ने अपनी बखर में इस प्रकार व्यक्त किया है—

बोलो तोल सकेगा क्या कोई सागर का पानी ?
तपते हुए सूर्य को देखेगा कोई अभिमानी ?
जलती आग हथेली पर रख सकता कोई मानव ?
कठिन जीतना वीर शिवा को, वह दुर्जय सेनानी ।